मासिक समाचारपत्र • पूर्णांक 46 • वर्ष 5, अंक 10 • दिसम्बर 2015 • पाँच रुपये • 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

क्या मेहनतकश के लिए "ख़ुशी" का मतलब यही है?? 7
चीन में आर्थिक संकट और मज़दूर वर्ग 11
'जो जलता नहीं, वह धुएँ में अपने आपको नष्ट कर देता है' – निकोलाई ऑस्त्रोवस्की 12

संसद में 6 मजदूर-विरोधी क़ानून पारित कराने में जुटी मोदी सरकार

देशी-विदेशी लुटेरों की ताबेदारी में मजदूर-हितों पर सबसे बड़े हमले की तैयारी

सम्पादक मण्डल

मोदी सरकार के डेढ़ वर्षों के शासन में पूँजीपतियों के हित में मज़दूरों-कर्मचारियों के अधिकारों में कटौतियाँ लगातार जारी हैं। मोदी के सत्ता में आते ही राजस्थान की भाजपा सरकार ने श्रम क़ानूनों में भारी बदलाव करके मज़दूरी, नौकरी की सुरक्षा और ट्रेड यूनियन सम्बन्धी अधिकारों पर खुली डकैती का मॉडल पेश किया था। नरेन्द्र मोदी को गद्दी पर बिठाने के लिए हज़ारों करोड़ ख़र्च करने वाले तमाम थैलीशाह लगातार यह माँग करते रहे हैं कि मोदी सरकार आर्थिक ''सुधार'' की गति और तेज़ करे। सुधार से उनका सबसे पहला मतलब होता है कि मज़दूरों को और अच्छी तरह निचोड़ने के रास्ते में बची-खुशी बन्दिशों को भी हटा दिया जाये। मोदी सरकार इस माँग को पूरा करने में जी-जान से जुटी हुई है। संसद के वर्तमान सत्र में मौजूदा श्रम क़ानूनों में बड़े पैमाने पर बदलाव करने की पूरी तैयारी कर ली गयी है।

श्रम मंत्रालय संसद में छह विधेयक पारित कराने की कोशिश में है। इनमें चार विधेयक हैं – बाल मज़दूरी (निषेध एवं विनियमन) संशोधन विधेयक, बोनस भुगतान (संशोधन) विधेयक, छोटे कारखाने (रोज़गार के विनियमन एवं सेवा शर्तें) विधेयक और कर्मचारी भविष्यनिधि एवं विविध प्रावधान विधेयक। इसके अलावा, 44 मौजूदा केन्द्रीय श्रम क़ानूनों को ख़त्म कर चार संहिताएँ बनाने का काम जारीहै, जिनमें से दो इस सत्र में पेश कर दी जायेंगी – मज़दूरी पर श्रम संहिता और औद्योगिक सम्बन्धों पर श्रम संहिता। इसके अलावा, न्यूनतम मज़दूरी संशोधन विधेयक और कर्मचारी राज्य बीमा विधेयक में भी संशोधन किये जाने हैं। संसद के शीतकालीन सत्र में ही भवन एवं अन्य निर्माण मज़दूरों से संबंधित क़ानून संशोधन विधेयक भी पेश किया जा सकता है। कहने के लिए श्रम क़ानूनों को तर्कसंगत और सरल बनाने के लिए ऐसा किया जा रहा है। लेकिन इसका एक ही मकसद है, देशी-विदेशी कम्पनियों के लिए मज़दूरों के श्रम को सस्ती से सस्ती दरों पर और मनमानी शर्तों पर निचोड़ना आसान बनाना।

श्रम मंत्री बंडारू दत्तात्रेय ने पहले ही साफ़ कर दिया है, ''श्रम क़ानूनों का मौजूदा स्वरूप विकास में बाधा बन रहा है, इसीलिए सुधारों की आवश्यकता है।'' कहने की ज़रूरत नहीं कि विकास का मतलब पूँजीपतियों का मुनाफ़ा बढ़ना ही माना जाता है। मज़दूरों को बेहतर मज़दूरी मिले, उनकी नौकरी सुरक्षित हो, उनके बच्चों को अच्छी शिक्षा और परिवार को सुकून की ज़िन्दगी मिले, इसे विकास का पैमाना नहीं माना जाता। इसलिए, विकास के लिए ज़रूरी है कि थैलीशाहों को अपनी शर्तों पर कारोबार शुरू करने, बन्द करने, लोगों को काम पर रखने, निकालने, मनचाही मज़दूरी तय करने आदि की पूरी छूट दी जाये और मज़दूरों को यूनियन बनाने, एकजुट होने जैसी ''विकास-विरोधी'' कार्रवाइयों से दूर रखा जाये।

श्रम मंत्री ने बेशर्मी से कहा कि ''ये क़ानून मज़दूरों के हित में हैं और उनके अधिकारों की रक्षा करेंगे। इनका उद्देश्य रोज़गार पैदा करना और कारोबार करना आसान बनाना है।'' इन दो बातों का आपस में क्या सम्बन्ध है, इसे कोई भी समझ सकता है। पिछले ढाई दशकों के दौरान श्रम क़ानूनों में जितने भी बदलाव हुए हैं वे सब ''मज़दूरों के हित में और उनके अधिकारों की रक्षा'' करने के नाम पर ही हुए हैं और इनका नतीजा सबके सामने है। लम्बी लड़ाइयों और क़ुर्बानियों से मज़दूरों ने जो भी अधिकार हासिल किये थे, उनमें से ज़्यादातर को छीना जा चुका है। देश की 93 प्रतिशत से भी ज़्यादा मज़दूर आबादी आज बिना किसी सामजिक सुरक्षा के काम करती है। उसे न्यूनतम मज़दूरी, काम के निर्धारित घण्टे, ओवरटाइम, पी.एफ़.-पेंशन-ईएसआई जैसे बुनियादी

(पेज 9 पर जारी)

बात श्रम क़ानूनों को कमज़ोर करने तक ही नहीं रुकेगी, क्योंकि फासीवाद बड़ी पूँजी के रास्ते से हर तरह की रुकावट दूर करने पर आमादा होता है और यह सब वह "राष्ट्रीय हितों" के नाम पर करता है।... देश के मेहनतकशों को अपने अधिकारों पर इस खुली डकैती के ख़िलाफ़ लड़ना है या भावनात्मक मुद्दों पर आपस में एक-दूसरे का सिर फुटौवल करना है, यह फ़ैसला उन्हें अब करना ही होगा।

मोदी सरकार द्वारा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को छूटें

उधारी साँसों पर पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को जीवित रखने के नीम-हकीमी नुस्खे

बिहार चुनावों में भाजपा नीत गठबन्धन को मिली करारी हार के बाद कई "विश्लेषक" अनुमान लगा रहे थे कि अब भाजपा देशी-विदेशी पूँजी के पक्ष में कट्टर आर्थिक सुधारों के मामले में कुछ ढील देगी। लेकिन दो दिन भी नहीं गुज़रे थे कि मोदी सरकार ने इन अनुमानों की हवा निकाल दी। अर्थव्यवस्था के पन्द्रह अलग-अलग क्षेत्रों में मोदी सरकार ने प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को बड़ी छूटों के ऐलान द्वारा यह स्पष्ट संकेत दिया दे दिया कि वह आर्थिक सुधारों (भूमण्डलीकरण-निजीकरण-उदारीकरण) की नीतियों में ज़रा भी ढील नहीं देगी, बल्कि इन्हें और तेज़ करेगी। मोदी सरकार की पूँजीवाद-साम्राज्यवाद परस्त नीतियाँ जारी रहेंगी।

जिन क्षेत्रों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में छूट देने का ताज़ा ऐलान हुआ है उनमें रक्षा, खेती-पशुपालन, बैंकिंग, दवाएँ, आधारभूत ढाँचा, दूरसंचार, खनन, नागरिक उड्डयन, भवन निर्माण, बागबानी आदि आर्थिक क्षेत्र शामिल हैं।

कांग्रेस के नेतृत्व वाली पिछली केंद्र सरकार द्वारा जब प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को छूटें दी जा रहीं थी तब भाजपा और इसकी सहयोगी पार्टियों ने बड़े विरोध का दिखावा किया था। भाजपा कह रही थी कि कांग्रेस सरकार देश को विदेशी हाथों में बेच रही है। गिरगिट की तरह रंग बदलते हुए केंद्र में सरकार बनने के फौरन बाद भाजपा ने प्रत्यक्ष विदेशी निवेश सम्बन्धित बहुत सी छूटें देने का ऐलान किया था। बीमा क्षेत्र में 49 प्रतिशत, रक्षा क्षेत्र में भी 49 प्रतिशत और रेल परियोजनाओं में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की सीमा बढ़ाकर 100 प्रतिशत कर दी गयी। विदेशी पूँजीपतियों को बुलावा देने के लिए नरेन्द्र मोदी दुनियाभर में दौरे-पर-दौरे किये जा रहे हैं। विदेशी कम्पनियों को आकर देश के संसाधनों और यहाँ के लोगों की मेहनत को लूटने के लिए तरह-तरह की रियायतों और छूटों के लालच दिये जा रहे हैं।

'फाईनेंशियल टाइम्स' अखबार की एक रिपोर्ट के मुताबिक भारत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के मामले में अभी दूसरे सभी देशों से आगे चल रहा है। भारत को इस साल 31 बिलियन डालर का विदेशी निवेश हासिल हुआ है जबकि चीन 28 बिलियन डालर हासिल कर दूसरे नंबर पर है और संयुक्त राज्य अमेरिका 27 बिलियन डालर का विदेशी निवेश हासिल कर तीसरे नंबर पर है। मोदी सरकार इसे बड़ी उपलब्धि मान रही है और अब कांग्रेस कह रही है कि उसकी विदेशी निवेश से सम्बन्धित नीतियाँ गलत हैं, कि इससे देश की सुरक्षा

(पेज 8 पर जारी)

आपस की बात

इस व्यवस्था को चोट दो!

यह व्यवस्था पूर्णतः लूट और अन्याय पर आधारित है। इस व्यवस्था में कोई मजदूर कितना भी हाथ पाँव मारेगा वह अपना विकास नहीं कर पायेगा; क्योंकि यह मालिकों की व्यवस्था है। मजदूर को अपने विकास के लिए अलग व्यवस्था बनाना होगा। इसे एक उदाहरण से आसानी से समझा जा सकता है। धान की छँटाई करने वाले हालर का सिस्टम अलग होता है और गेहूँ की पिसाई करने वाली चक्की का सिस्टम अलग होता है। अगर आप चाहेंगे कि धान की छँटाई हम गेहूँ की पिसाई करने वाली चक्की में करें तो यह कतई नहीं होगा; और अगर आप चाहेंगे कि गेहूँ की पिसाई हम धान की छँटाई करने वाले हालर में करें तो यह कतई नहीं होगा। इसलिए हमसफर साथियों! हम मजदूरों को अपने विकास के लिए अलग व्यवस्था बनानी होगी और वह व्यवस्था होगी 'मजदूर राज'। लेकिन यह अकेले सम्भव नहीं है। कहावत है – हाथी हाथ से ठेला नहीं जा सकता। हम सभी मजदूरों को मिलकर इस सड़ी-गली व्यवस्था पर एक साथ चोट करना होगा!

गीत

फाटल पैर बेवइया हो भैया गर्मी के दुपहरिया में,

खून ई बनल पसीना भैया गरमी की दुपहरिया में;

केतनों काम करीला लेकिन मालिक के संतोष नहीं ,

अहंकार में डूबल हौवे, वोकरे तनिकों होश नहीं;

मजूर कै संगी मजूर हौ, येह दिल्ली नगरिया में ;

फाटल पैर बेवइया हो भैया....

केतनों जाँगर पेरा भैया कम कइके बतावय ला,

आठ बजे तक काम से छोड़े सगरो दिन दौड़ावे ला,

बाद में भैया चक्कर काटीं आस में अपनी माजूरिया के;

फाटल पैर बेवइया हो भैया....

कपिल, करावल नगर, दिल्ली

हम सभी मजदूरों को एकजुट हो जाना चाहिए

मेरा नाम मोहम्मद मेहताब है और मैं मुम्बई के मंडला की एक स्टील फैक्टरी में काम करने वाला मज़दूर हूँ। जिस फैक्टरी में मैं काम करता हूँ उसमें 25 से 30 लोग काम करते हैं जिनमें 10-12 महिलाएं हैं। यहां पास में ही दो और फैक्ट्रियां भी हैं और तीनों फैक्ट्रियों में कुल मिलाकर लगभग 350 मजदूर काम करते हैं जिनमें लगभग 200 महिलाएं हैं। फैक्टरी में स्टील पोलिशिंग का काम होता है और यह काफी खतरनाक है। स्टील लाइन में वैसे भी सारे ही काम बहुत खतरनाक हैं और आए दिन फैक्ट्रियों में दुर्घटना होती रहती है। दुर्घटना होने पर मालिक थोड़ी-बहुत दवा-दारू करवा देता है लेकिन मुआवजा कभी नहीं दिया जाता। दुर्घटना के बाद मालिक मजदूरों को काम पर भी नहीं रखता है।

यहां काम करने के कोई घण्टे तय नहीं हैं और रोज 12-13 घण्टे से कम काम नहीं होता है। जिस दिन लोडिंग-अनलोडिंग का काम रहता है उस दिन तो 16 घंटे तक काम करना पड़ता है। हफ्ते में 2-3 बार तो लोडिंग-अनलोडिंग भी करनी ही पड़ती है। मुम्बई जैसे शहर में महंगाई को देखते हुए हमें मजदूरी बहुत ही कम दी जाती है। अगर बिना छुट्टी लिए पूरा महीना हाड़तोड़ काम किया जाए तो भी 8-9 हजार रूपये से ज़्यादा नहीं कमा पाते हैं। हम चाह कर भी अपने बच्चों को अच्छे स्कूलों में नहीं भेज सकते। यहां किसी भी फैक्ट्री का रजिस्ट्रेशन नहीं हुआ है और श्रम-कानूनों के बारे में किसी भी मज़दूर को नहीं पता है। बहुत से मज़दूरों को फैक्टरी के अन्दर ही रहना पड़ता है क्योंकि मुम्बई में सिर पर छत का इन्तजाम कर पाना बहुत मुश्किल है। ऐसे मजदूरों का तो और भी ज़्यादा शोषण होता है। हमें शुक्रवार को छुट्टी मिलती है लेकिन उन्हें तो रोज़ ही काम करना पड़ता है।

पहले मैं इलाहाबाद में रहता था और वहां पर खाद के कारखाने में काम करता था। और भी कई सारे शहरों में मैंने काम किया है लेकिन सभी जगह मज़दूरों की हालत एक सी ही है। मेरे ख्याल से हम सभी मजदूरों को एकजुट हो जाना चाहिए और अपने अधिकारों के लिए लड़ना चाहिए। हमें अपनी मज़बूत यूनियन बनानी होगी और तभी हम मालिकों से लड़ सकते हैं। पहले से जो बड़ी-बड़ी यूनियनें हैं वे मज़दूरों के लिए काम नहीं करती हैं। हमें ऐसी यूनियनों से बचना होगा और खुद अपनी क्रान्तिकारी यूनियन बनानी होगी।

- मोहम्मद मेहताब, मुंबई

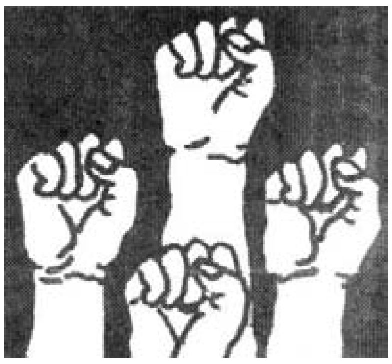

जागेगा मज़दूर
ज़माना बदलेगा!
दुनिया का ये
ताना–बाना बदलेगा!

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" **- लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिये/जुटाइये।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिये।

मज़दूर बिगुल के लिए अपने कारख़ाने, दफ़्तर या बस्ती की रिपोर्टें, लेख, पत्र या सुझाव आप इन तरीक़ों से भेज सकते हैं:

डाक से भेजने का पता: मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
ईमेल से भेजने का पता: bigulakhbar@gmail.com

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट

www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिये भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं:
www.facebook.com/MazdoorBigul

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर ''कम्युनिस्टों'' और पूंजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब नहीं मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीआर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता:
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
बैंक खाते का विवरण: Mazdoor Bigul
खाता संख्या: 0762002109003787, IFSC: PUNB0076200
पंजाब नेशनल बैंक, निशातगंज शाखा, लखनऊ

सदस्यता: वार्षिक: 70 रुपये (डाकख़र्च सहित); आजीवन: 2000 रुपये

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं:
फ़ोन: 0522-2786782, 8853093555, 9936650658
ईमेल: bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक: www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 8853093555
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति - रु. 5/- वार्षिक - रु. 70/- (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता - रु. 2000/-

मारुति मजदूरों के संघर्ष की बरसी पर रस्म अदायगी

बीते 27 नवम्बर को गुडगाँव के हुड्डा ग्राउंड में मारुति सुजुकी वर्कर्स यूनियन ने मारुति अधिकार कन्वेंशन आयोजित किया। यह संघर्ष मारुति मज़दूरों के पिछले साढ़े – तीन साल से चल रहे संघर्ष का अगला पड़ाव है। इसके पहले भी इस साल दो बार, 27 फ़रवरी और 18 जुलाई को जेल में बंद मारुति मज़दूरों की रिहाई के लिए सम्मलेन और बरसी आयोजित की गयी थी।18 जुलाई 2012 को घटी घटना के बाद मारुति ने एक झटके में तक़रीबन 2300 श्रमिकों को काम से निकाल दिया था, जिनमें 546 स्थायी तथा 1800 ठेका-कैजुअल कर्मचारी थे। 215 मज़दूरों के ऊपर झूठे मुक़दमे दायर किये गए, और 147 मज़दूरों को जेल के अन्दर ठूंस दिया गया जिनमे से अधिकतर मज़दूर 3 सालों तक जेल में बंद रहे। आज भी 36 मजदूर सलाखों के पीछे बंद हैं। मारुति-सरकार गठजोड़ ने नंगे रूप से मज़दूरों का दमन किया। पैसे के दम पर झूठे गवाह पेश किये गए और एक तरफ़ा तरीके से कार्रवाई की गयी। पूंजीवादी न्याय व्यवस्था ने नंगे तौर पर मारुति प्रबंधन का साथ दिया। अदालत ने यहाँ तक कहा की मज़दूरों को रिहा नहीं किया जा सकता क्योंकि इससे विदेशी निवेश पर असर पड़ेगा। मज़दूरों के ऊपर दमन का पाट चलाते वक़्त मारुति के भार्गव ने कहा था की मामला 18 जुलाई की घटना का नहीं है बल्कि वर्ग संघर्ष का है।

मज़दूरों के ऊपर इस दमन का प्रतिरोध मारुति के बरखास्त किये गए मज़दूरों ने क्रन्तिकारी संघर्ष की शुरुआत के साथ किया। किन्तु यह संघर्ष भी गद्दार ट्रेड यूनियनों और कुछ अराजकतावादी संघाधिपत्यवादी संगठनों के नेतृत्व में अपने तमाम जुझारूपन के बावजूद, तमाम सम्भावनाओं के बावजूद, घुमावदार रास्तों से गुजरता हुआ विघटित हो गया। कभी हरियाणा के उस वक़्त के मुख्यमंत्री हुड्डा के आवास पर तो कभी कैथल के मंत्री सुरजेवाला के आवास पर धरना प्रदर्शन आयोजित किया गया और फिर कैथल के जिला सचिवालय पर खूंटा डाल कर बैठा गया। तो कभी खाप पंचायत से मदद की गुहार लगायी गयी। नेतृत्वकारी संगठनों ने कभी भी सुसंगतता का परिचय नहीं दिया और संघर्ष को अराजक तरीके से दिशा देते गए। पूरे आन्दोलन के दौरान 'आगे का रास्ता क्या हो ' यह सवाल सिरे से गायब रहा। इस आन्दोलन को अपनी ही उर्जा शक्ति यानि की पूरे सेक्टर में फैले मज़दूर आबादी से ही काट कर रखा गया। यह आन्दोलन कारखाना केन्द्रित रह गया और मारुति मज़दूरों की चौहादी से बहार नहीं निकल पाया और न ही खूंटा गाड़ कर बैठने की जगह के लिए राजधानियों को यानि दिल्ली या चंडीगढ़ को चुना गया बल्कि हरियाणा के जिलों को चुना गया। आम मज़दूरों में क्रांतिकारी उत्साह व दम होने के बावजूद यह आन्दोलन बिखर गया। निश्चित ही बात सिर्फ मारयति की नहीं है बल्कि आज पूरे मज़दूर आन्दोलन की स्थिति पिछड़ी हुई है। क्रांति पर प्रतिक्रान्ति की लहर हावी है लेकिन साथ ही आज का समय इसके कारकों की पड़ताल करने और नयी शुरुआत के तरीकों को ढूँढने का समय है। अगर आज मज़दूर वर्ग के हिरावल को गुडगाँव-मानेसर-धरुहेरा-बावल तक फैली इस आद्योगिक पट्टी में मज़दूर आन्दोलन की नयी राह टटोलनी है तो पिछले आंदोलनों का समाहार किये बगैर, उनसे सबक सीखे बगैर आगे नहीं बढ़ा जा सकता है। अगर बरसी या सम्मलेन से यह पहलू नदारद हो तो उसकी महत्ता का कोई अर्थ नहीं रह जाता है। अगर ईमानदारी से कुछ सवालों को खड़ा नहीं किया जाय या उनकी तरफ अनदेखी की जाय तो यह किसी भी प्रकार से मज़दूर आन्दोलन की बेहतरी की दिशा में कोई मदद नहीं कर सकता। जहाँ इस घटना के बरसी के अवसर पर आर.एस.एस मार्का नारे लगते हैं, महिला विरोधी प्रसंगों का ज़िक्र किया जाता है। वहीँ अभी बीते सम्मलेन से पिछले साढ़े तीन साल के संघर्ष का समाहार गायब रहता है। अपनी गलतियों से सबक सीखने की ज़रुरत पर बात नहीं की जाती है। 'क्या करें', 'आगे का रास्ता क्या हो', ये सवाल भी परदे के पीछे रह जाते हैं। हमें लगता है कि आज क्रन्तिकारी मज़दूर आन्दोलन की ज़रूरत है कि दलाल गद्दार ट्रेड यूनियनों को उनकी सही जगह पहुँचाया जाय यानी इतिहास की कूड़ा गाडी में। आम मज़दूर आबादी के बीच उनका जो भी थोड़ा बहुत भ्रम बचा है उसका पर्दाफाश किया जाय। आज भी ये मज़दूरों के स्वतंत्र क्रन्तिकारी पहलकदमी की लुटिया डुबाने का काम बखूबी कर रहे हैं। श्रीराम पिस्टन से लेकर ब्रिजस्टोन के मज़दूरों का संघर्ष इसका उदाहरण हैं। लेकिन मंच पर आज भी इन नेताओं का काबिज होना अपने आप में मारुति के आन्दोलन की विफलता का कारक समझाते हैं। कुछ लोगों का मानना था कि तमाम संगठनों को अपने संकीर्ण हितों से उठ कर एकता बनाने की ज़रुरत है। किन्तु यह नहीं बताया गया की दलाल गद्दार संगठनों के साथ क्रांतिकारी आन्दोलन अपनी एकता कैसे कायम कर सकता है। आम मेहनतकश मज़दूरों को उनके एतिहासिक विरासत से परिचित करने का काम आज के समय में कितनी महत्ता का प्रश्न है इस पर भी इस कार्यक्रम में किसी प्रकार की रौशनी नहीं डाली गयी। इस बरसी कार्यक्रम में एक तरफ राजकीय दमन का खूब ज़िक्र किया गया, यह बात पूरी तरीके से साफ़ थी कि जब कोर्ट, अदालत, पुलिस, सेना ये सब पूंजीपतियों की सेवा के लिए खड़ी है, लेकिन इसके बरक्स मज़दूरों के संगठन की आवश्यकता यानि पार्टी की ज़रुरत का सवाल भी गायब रहा। इस हालत में ऐसे कन्वेंशन, दलाल ट्रेड यूनियनों के एक दिनी हड़ताल की ही तरह, रस्म अदायगी साबित हो जाता है। जहाँ मज़दूर आन्दोलन में सक्रिय कुछ सतरंगी संगठनों का जमावड़ा होता है कुछ गरमागरम बातें होती हैं कुछ घिसे-पिटे प्रस्तावों पर सहमती बनाई जाती है। 'क्रांति', 'एकता' का जुमला दोहराया जाता है लेकिन मज़दूरों के बीच लगातार व्यवहारिक कार्रवाई नदारद रहती है।

– अनन्त

शहीद करतार सिंह सराभा के शहादत दिवस पर समाज बदलने के लिए आगे आने का आह्वान

शहीद करतार सिंह सराभा के 100वीं शहादत वर्षगाँठ (16 नवम्बर) के अवसर पर लुधियाना में टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन व कारखाना मज़दूर यूनियन ने नुक्कड़ सभाएँ की और पर्चा बाँटा। वक्ताओं ने कहा कि महान गदरी सूरबीर शहीद करतार सिंह सराभा महज साढे उन्नीस वर्ष की उम्र में अंग्रेज हकूमत द्वारा फाँसी पर चढ़ाकर शहीद कर दिए गए थे। वे एक ऐसे समाज के निर्माण के लिए लड़ रहे थे जहाँ इंसान के हाथों इंसान को दबाया न जाए, जहाँ धर्म के नाम पर कत्लेआम न हो, जहाँ जाति व्यवस्था का कोई नामो-निशां न हो। शहीद करतार सिंह सराभा व उनके गदर पार्टी के साथियों ने अपने समय के जन शत्रुओं की पहचान की थी। हमें आज अपने समय के जनशत्रुओं की पहचान कर इंसान के हाथों इंसान की लूट के खात्मे की जद्दोजहद को आगे बढ़ाना है। शहीद करतार सिंह सराभा व उनके साथियों को यही एक सच्ची श्रद्धांजलि हो सकती है। नुक्कड़ सभाओ को राजविन्दर, समर, छोटेलाल, प्रेमनाथ, घनश्याम आदि ने सम्बोधित किया।

– बिगुल संवाददाता

साम्प्रदायिक विरोधी संयुक्त मोर्चे द्वारा फासीवाद के खिलाफ़ ज़ोरदार रोष प्रदर्शन

विभिन्न धर्म निरपेक्ष, जनवादी, इंसाफपसंद संगठनों द्वारा गठित साम्प्रदायिकता विरोधी संयुक्त मोर्चा के साझे बैनर तले 4 नवम्बर को लुधियाना के मजदूरों, नौजवानों, छात्रों, लेखकों, बुद्धिजीवियों ने लुधियाना में डी.सी. कार्यालय पर रोष प्रदर्शन किया। यह प्रदर्शन आर.एस.एस. के नेतृत्व वाले भाजपा, विश्व परिषद, बजरंग दल जैसे दर्जनों हिन्दुत्ववादी साम्प्रदायिक फासीवादी संगठनों द्वारा धार्मिक अल्पसंख्यकों, दलितों, जनवादी, धर्मनिरपेक्ष, सामाजिक कार्याकर्ताओं-बुद्धिजीवियों-लेखकों के दमन, गौ रक्षा, लव जेहाद के बहाने मुस्लमानों के कत्लेआम, हिन्दु धर्म के रक्षा के नाम पर देश भर में जनमानस में साम्प्रदायिक जहर फैलाने, विचारों की आजादी पर हमलों, लोगों के अन्य सभी आर्थिक-राजनीतिक जनवादी अधिकारों पर हमलों के खिलाफ़ किया गया। वक्ताओं ने कहा कि हिन्दुत्वी कट्टरपंथी आज सब से खतरनाक साम्प्रदायिक व फासीवादी ताकत है लेकिन अन्य धर्मों से सम्बन्धित साम्प्रदायिकता भी जनता की शत्रु है। हिन्दुत्ववादी साम्प्रदायिक फासीवाद का मुकाबला अल्पसंख्यक साम्प्रदायिकता से नहीं बल्कि सारी जनता की फौलादी एकजुटता के सहारे ही किया जा सकता है। सिखों की भावनाओं के ठेस पहुँचाकर पंजाब में साम्प्रदायिक माहौल पैदा करने को संयुक्त मोर्चे ने हुक्मरानों की घटिया चालें करार देते हुए दोषियों को सख्त से सख्त सजा देने की माँग की है।

संयुक्त मोर्चे ने लोगों को आपसी सदभावना व भाईचारा मजबूत करने का आह्वान किया है। वक्ताओं ने कहा कि लोगों को हुक्मरानों की फूट डालो और राज करो की घटिया साजिशों की पहचान करते हुए इसके खिलाफ़ जुझारू जनान्दोलन का निर्माण करना होगा।

वक्ताओं ने कहा कि हिन्दु धर्म को खतरा, गाय को खतरा, तथाकथित लव-जेहाद से हिन्दु लडकियों को खतरा, आदि खतरों के हौवे इसलिए खडे किये जा रहे हैं क्योंकि हुक्मरानों को जनाक्रोश से खतरा है। मुट्ठीभर धनाढ्य वर्गों को महँगाई, बेरोजगारी, गरीबी, बदहाली से त्रस्त देश की 85 प्रतिशत आबादी से खतरा है। हुक्मरानों को लोगों की हक, सच, इंसाफ की आवाज उठाने, संगठित होने, संघर्ष करने, लिखने, बोलने, विचार व्यक्त करने के जनवादी अधिकारों से खतरा है। हुक्मरानों को देशी-विदेशी पूँजीपतियों के पक्ष में लागू की जा रही निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों के खिलाफ़, सरकारों द्वारा श्रमिक अधिकारों के हनन, जबरन जमीनें हथियाने आदि के खिलाफ़ लोगों के आगे बढ़ रहे संघर्षों से खतरा है।

संयुक्त मोर्चे ने लेखकों, इतिहासकारों, कलाकारों द्वारा पदम भूषण, साहित्य अकादमी अवार्ड जैसे इनाम वापिस करने का ज़ोरदार स्वागत करते हुए अन्य लेखकों, इतिहासकारों, कलाकारों, बुद्धिजीवियों को भी साम्प्रदायिक फासीवाद विरोधी आन्दोलन में शामिल होने का आह्वान किया है।

इस प्रदर्शन को बिगुल मज़दूर दस्ता के प्रतिनिधि राजविन्दर और जमहूरी अधिकार सभा के प्रतिनिधि प्रो. जगमोहन के अलावा कारखाना मज़दूर यूनियन, एटक, इंकलाबी केन्द्र पंजाब, पंजाब लोक सांस्कृतिक मंच, सीटू, गवर्नमैंट स्कूल टीचरज़ यूनियन, डी.वाई.एफ.आई., मोल्डर एण्ड स्टील वर्करज़ यूनियन, पंजाबी साहित्य अकादमी (लुधियाना), तर्कशील सोसाइटी, इण्डियन डाक्टर्स फार पीस एण्ड डिवेलपमेंट, सर्व साझा क्रान्तिकारी मज़दूर यूनियन, डैमोक्रेटिक लायरज ऐसोसिएशन, लफ़्जों का पुल साहित्य सभा, महासभा, रेलवे पेंशनर्ज एसोसिएशन, हौज़री वर्करज़ यूनियन संगठनों के प्रतिनिधियों आदि ने सम्बोधित किया। मंच संचालन बिगुल मज़दूर दस्ता के लखविन्दर व ज्वांइण्ट काउँसिल आफ ट्रेड यूनियन्स के डी.पी. मौड़ ने किया।

–बिगुल संवाददाता

पंजाब सरकार द्वारा "इंस्पेक्टर राज" के ख़ात्मे का ऐलान

पूँजीपतियों के हित में मज़दूरों-मेहनतकशों के हकों पर डाका

पंजाब की अकाली-भाजपा सरकार लंबे समय से पंजाब से ''इंस्पेक्टर राज'' ख़त्म करने की बात कर रही है। पिछले दिनों उप-मुख्य मंत्री सुखबीर बादल और अन्य सरकारी आधिकारियों ने इससे सम्बन्धित सरकार की कई तजवीज़ों के ऐलान किये हैं। सरकार द्वारा जो तजवीजें पेश की गई हैं उनसे भी यह स्पष्ट होता है कि केंद्र और अन्य राज्य सरकारों की तरह पंजाब सरकार भी किस बड़े स्तर पर मज़दूरों-मेहनतकशों की लूट-खसोट और तेज़ करने की जन विरोधी योजनाएँ बनाए हुए है।

पूरे देश में ''इंस्पेक्टर राज'' के ख़ात्मे की चल रही प्रक्रिया के तहत ही पंजाब में भी यह प्रक्रिया जारी है। सुखबीर बादल बार-बार यह कहता रहा है कि वह ''इंस्पेक्टर राज'' ख़त्म करके रहेगा। नवंबर महीने में एक मीटिंग के दौरान सुखबीर बादल ने कहा है कि उसकी हार्दिक इच्छा है कि 31 दिसंबर 2015 तक पंजाब में से ''इंस्पेक्टर राज'' का ख़ात्मा कर दिया जायेगा। इसी साल 10 सितम्बर को दिए एक बयान में सुखबीर बादल ने कहा था कि ''किसी भी इंस्पेक्टर को फैक्ट्री क्षेत्र में दाख़िल होने की इजाज़त नहीं दी जायेगी''। उद्योग और व्यापार से सम्बन्धित अलग -अलग कानूनों के अंतर्गत श्रम, आमदन कर, ई.एस.आई.सी., ई.पी.एफ., ख़ुराक, प्रदूषण नियंत्रण, औद्योगिक सुरक्षा आदि विभागों के इंस्पेक्टरों की द्वारा औद्योगिक और व्यापारिक इकाईयों के ''मुआइने'' और कानूनों के उलंघनों के लिए ''कार्यवाही'' (जुर्माने आदि) को पूँजीपति ''इंस्पेक्टर राज'' कहते हैं। पूँजीपति कहते हैं कि ''बार -बार'' होने वाले ''मुआइनों'' और ''बहुत ज़्यादा'' कागज़ी कार्यवाही के कारण उनको कारोबार करने में बहुत परेशानी होती है। उनका कहना है कि ''छोटी-छोटी'' बातों की शिकायतों पर इंस्पेक्टर उनको तंग करते हैं।

पंजाब सरकार द्वारा इससे सम्बन्धित नवंबर 2015 में पेश तजवीज़ों के मुताबिक औद्योगिक और व्यापारिक संस्थानों के मुआइनों के लिए एक नया संस्थान ''औद्योगिक मुआइना ब्यूरो'' कायम किया जायेगा। इस के अंतर्गत सभी कानूनों के अंतर्गत इकट्ठा ही मुआइना और वार्षिक लेखा-जोखा हो जाया करेगा। यह तजवीज़ भी पेश की गई है कि श्रम विभाग का कोई भी इंस्पेक्टर किसी शिकायत और केंद्रीय कानून के अंतर्गत अति ज़रूरी होने पर ही मुआइनों के लिए जायेगा। दूसरी स्थिति में मुआइना श्रम कमिश्नर की आगामी आज्ञा के बिना नहीं हो सकेगा। एक तजवीज़ यह रखी गई है कि ब्वायलर इंस्पेक्टर सम्बन्धित अथारिटी से आगामी आज्ञा के बिना उतनी देर तक किसी फैक्ट्री का दौरा नहीं करेगा जब तक सम्बन्धित फर्म द्वारा उसको सालाना मुआइने के लिए न्योता नहीं दिया जाता ! सभी विभागों खासकर श्रम, जंगलात, प्रदूषण कंट्रोल बोर्ड, उद्योग विभाग आदि को अपनी वेबसाइटें अपडेट करने के लिए कहा गया है जिससे आनलाइन अर्ज़ी दाख़िल करने, फ़ीसों का भुगतान आदि के साथ -साथ स्व-घोषणा आदि के द्वारा ''मुआइना' 'प्रक्रिया को सरल और तेज़ बनाया जा सके।

पूँजीपतियों के पक्ष में ''इंसपेकटर राज'' ख़त्म करने का मुद्दा लंबे समय से जारी है। प्रधानमंत्री से लेकर अलग -अलग केंद्रीय मंत्रियों, अलग-अलग राज्यों के मुख्य मंत्रियों और मंत्रियों और आधिकारियों द्वारा द्वारा बार-बार इस ''दैत्य'' ''इंस्पेक्टर राज'' को ख़त्म करने के लिए कदम उठाने के ऐलान होते रहे हैं। केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा काम और अन्य कानूनों में बड़े बदलाव करके इस मुसीबत का ख़ात्मा करने की प्रक्रिया जारी है। बिना किसी छूट के, भाजपा, कांग्रेस, अकाली दल, समाजवादी पार्टी, जे.डी.यू., आम आदमी पार्टी, बसपा, आदि प्रत्येक पार्टियों की केंद्र या राज्य सरकार की कार्य-सूची में यह एक बड़ा काम शामिल रहा है।

आइए जरा अब औद्योगिक इलाकों, कारखानों और अन्य व्यापारिक संस्थानों में अलग-अलग कानूनों के पालन, ''इंस्पेक्टर राज'', मज़दूरों की हालत आदि के बारे में ज़मीनी हकीकत पर थोड़ी नज़र डालें।

(पेज 8 पर जारी)

फ़िलिस्तीन के समर्थन में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में कार्यक्रम

गुजरे 23 नवंबर को अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय (एएमयू) में 'फ़िलिस्तीन के साथ एकजुट भारतीय जन' ने 'रेज़ोनेंस' सांस्कृतिक समूह के साथ मिलकर फ़िलिस्तीन के प्रति एकजुटता जताने के लिए एक विशेष कार्यक्रम का आयोजन किया। एक दिवसीय इस कार्यक्रम दो सत्रों में संपन्न हुआ। पहले सत्र में 'जायनवाद और फ़िलिस्तीनी प्रतिरोध तथा मध्य-पूर्व में साम्राज्यवादी साज़िशें' विषय पर एक विचार चर्चा आयोजित की गई जिसमें **प्रो. इरफ़ान हबीब, प्रो. ए आर वीजापुर, डा. मोहिबुल हक़** एवं **आनन्द सिंह** ने अपने वक्तव्य रखे।

कार्यक्रम में बोलते हुए प्रो. इरफ़ान हबीब

विचार गोष्ठी में बोलते हुए प्रख्यात इतिहासकार प्रो. इरफ़ान हबीब ने इस बात पर खुशी ज़ाहिर की कि ए.एम.यू में लंबे अरसे के बाद फ़िलिस्तीन के मसले पर कोई कार्यक्रम आयोजित हो रहा है। अपने वक्तव्य में प्रो. हबीब ने समूचे इज़रायल-फ़िलिस्तीन विवाद की ऐतिहासिक रूपरेखा प्रस्तुत की एवं बताया कि किस प्रकार जायनवादियों ने पश्चिमी साम्राज्यवादियों की मदद से फ़िलिस्तीन की ज़मीन हड़पी। उन्होंने स्पष्ट किया कि हालाँकि यह बात सच है कि आज जिसे फ़िलिस्तीन कहा जाता है वहाँ प्राचीन काल में यहूदी आबादी रहती थी और उस आबादी को संभवत: दमन की वजह से फ़िलिस्तीन छोड़ना पड़ा, परन्तु प्राचीन काल में यहूदियों का दमन रोम साम्राज्य के दौर में हुआ था और उस समय इस्लाम का उदय भी नहीं हुआ था। इस प्रकार यहूदियों के फ़िलिस्तीन छोड़ने के लिए अरबों की कोई भूमिका नहीं थी। अरबों ने जब फ़िलिस्तीन पर फ़तह की तो वहाँ की अधिकांश आबादी यहूदी नहीं बल्कि ईसाई थी। अरबों के शासन के दौरान यहूदियों के दमन का कोई प्रमाण नहीं मिलता है। इसलिए यह कहना पूरी तरह से ग़लत है कि यहूदी एवं मुस्लिम सदियों से लड़ते आये हैं। इज़रायल और फ़िलिस्तीन के मौजूदा विवाद के इतिहास की चर्चा करते हुए प्रो. हबीब ने बताया कि उन्नीसवीं सदी के अन्त में ज़ायनवाद की विचारधारा के उदय के बाद से साम्राज्यवादियों की मदद से यहूदियों को फ़िलिस्तीन में बसाने की शुरुआत होती है। उन्होंने 1917 के प्रसिद्ध बैलफोर घोषणा का हवाला दिया जिसमें पहली बार फ़िलिस्तीन में यहूदियों के देश बनाने की बात कही गई।

इस विवाद में भारत की भूमिका का ज़िक्र करते हुए प्रो. हबीब ने कहा कि हालाँकि ऐतिहासिक रूप से भारत फ़िलिस्तीन का साथ देता आया है, परन्तु हाल के दशकों में भारत की विदेश नीति इज़रायल की ओर ज़्यादा झुकती नज़र आ रही है। उन्होंने कहा कि भारत को फ़िलिस्तीन का पूरा साथ देना चाहिए और इज़रायल से अपने रिश्ते ख़त्म करने चाहिए। उन्होंने नरेन्द्र मोदी की प्रस्तावित इज़रायल यात्रा पर भी चिन्ता ज़ाहिर की।

'फ़िलिस्तीन के साथ एकजुट भारतीय जन' के प्रतिनिधि आनन्द सिंह ने कहा कि पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों ने शुरुआत से ही जायनवादियों को फ़िलिस्तीन की ज़मीन हड़पने एवं फ़िलिस्तीनियों की क़ौम को नेस्तनाबूद करने में मदद की। उन्होंने बताया कि फ़िलिस्तीन और मध्यपूर्व के क्षेत्र की भूराजनीतिक एवं सामरिक स्थिति एवं तेल की खोज के बाद इस इलाके में तेल के प्रचुर भण्डार की वजह से पश्चिमी साम्राज्यवादियों द्वारा ज़ायनवाद के प्रोजेक्ट का पुरज़ोर समर्थन किया ताकि इस क्षेत्र में ऐसी ताक़त उभरे जो साम्राज्यवादियों के हित में काम करे। मध्यपूर्व के क्षेत्र के मौजूदा हालात का ज़िक्र करते हुए साम्राज्यवाद के अन्तरविरोध इस क्षेत्र में सबसे घनीभूत रूप में दिख रहे हैं जिसकी वजह से भयंकर हिंसा और अस्थिरता का माहौल इस क़दर बना हुआ है कि यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि यह पूरा इलाका बारूद की ढेर पर टिका हुआ है। उन्होंने कहा कि हालाँकि भारतीय हुक्मरान फ़िलिस्तीनी अवाम के संघर्ष से मुँह मोड़ते नज़र आ रहे हैं, लेकिन हिन्दुस्तान की अवाम को फ़िलिस्तीन की अवाम के जुझारू संघर्ष का पूरा साथ देना चाहिए। उन्होंने दुनिया भर में चल रहे बहिष्कार, विनिवेश एवं प्रतिबन्ध (बीडीएस) आन्दोलन के बारे में तथा नरेन्द्र मोदी की प्रस्तावित इज़रायल यात्रा को रद्द करने की माँग को लेकर चलाये जा रहे ऑनलाइन हस्ताक्षर अभियान के बारे में भी श्रोताओं को बताया और उनसे समर्थन की अपील की।

एमयू के राजनीतिशास्त्र विभाग के डा. मोहिबुल हक़ ने अपने वक्तव्य में कहा कि पश्चिमी साम्राज्यवादी ताक़तें अपनी तमाम संस्थाओं के ज़रिये दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में चल रहे प्रतिरोध आन्दोलनों का अपराधीकरण करके उनको बदनाम देने का काम कर रही हैं। फ़िलिस्तीन का मुद्दा इसका सबसे ज्वलंत उदाहरण है जहाँ लोगों को प्रतिरोध के ऊपर आतंकवाद का ठप्पा लगाकर उसको कमज़ोर किया जा रहा है। एमयू के राजनीतिशास्त्र विभाग के प्रो. वीजापुर ने भी फ़िलिस्तीन के लोगों के प्रतिरोध के प्रति अपना समर्थन जताया एवं कार्यक्रम के आयोजन के लिए आयोजकों को धन्यवाद दिया।

कार्यक्रम के दूसरे सत्र में फ़िलिस्तीनी कविताओं का पाठ किया गया एवं 'रेज़ोनेंस' की टीम द्वारा फ़िलिस्तीनी प्रतिरोध को समर्पित कुछ गीतों की प्रस्तुति की गई। कार्यक्रम के अन्त में फ़िलिस्तीनी संघर्ष पर केन्द्रित डॉक्युमेंटरी फिल्म 'फाइव ब्रोकेन कैमराज़' दिखाई गई। कार्यक्रम का संचालन 'फ़िलिस्तीन के साथ एकजुट भारतीय जन' से जुड़े अपूर्व मालवीय ने किया।

प्रो. इरफ़ान हबीब के भाषण के वीडियो का लिंक: https://www.youtube.com/watch?v=hL8aleK7sBM

नरेन्द्र मोदी की प्रस्तावित इज़रायल यात्रा को रद्द करने की माँग करने वाली याचिका का लिंक: https://www.change.org/p/prime-minister-of-india-cancel-the-proposed-visit-of-indian-prime-minister-to-israel-and-total-boycott-of-israel

– बिगुल संवाददाता

खट्टर सरकार का फरमान- मुँह सिलकर करो काम!

केन्द्र में मोदी सरकार और हरियाणा में खट्टर सरकार आने के बाद भाजपा समर्थकों ने घोषणा की कि अब देश 'हिन्दू राष्ट्र'के एजेण्डे पर चलेगा। भाजपा सरकार के पिछले डेढ़ साल में संघ के दोनों लाडलों (मोदी-खट्टर) ने सिद्ध कर दिया कि इनके तथाकथित हिन्दू राष्ट्र में केवल अम्बानी, अदानी जैसे पूँजीपतियों, बड़े व्यापारी और धर्म के ठेकेदारों के अच्छे दिन आयेंगे (वैसे इनके बुरे दिन थे ही कब?) मज़दूरों-ग़रीबों- किसानों से लेकर दलितों-अल्पसंख्यों पर दमन और उत्पीड़न के हमले तेज होंगे। अब इसी कड़ी में खट्टर सरकार ने सरकारी कर्मियों के हड़ताल, धरने और प्रदर्शन में हिस्सा लेने पर रोक लगा दी है। सरकार ने हड़ताल आदि में भाग लेने को ग़लत ठहराते हुए सरकारी आचरण 1966 के नियम 7 व 9 में निहित प्रावधानों का हवाला देकर कहा है कि यूनियन का गठन किया जाना, हड़ताल पर जाने के अधिकार की गांरटी नहीं माना जा सकता। साफ़ है ये तुगलकी फरमान मज़दूरों-कर्मचारियों को चेतावनी है कि मुँह सिलकर काम करो।

असल में खट्टर सरकार हरियाणा में श्रम-कानूनों को कमजोर करने से लेकर निजीकरण-ठेकाकरण की नीतियों को जनता पर थोपना चाहती है और इसके खिलाफ उठाने वाली हर आवाज को पहले ही दबाने के लिए कानूनी फंदा कस रही है। वही मज़दूर संगठनों ने हड़ताल-धरने पर पांबदी लगाने के फरमाने के खिलाफ आवाज उठानी शुरू कर दी।

आइये, अब खट्टर सरकार की एक वर्ष की कथनी-करनी पर भी नजर डाल लेते है। अभी हाल में खट्टर सरकार अपनी पीठ थपथपाने के लिए अखबारों, टीवी-चैनलों में बड़े-बड़े विज्ञापनों द्वारा अपने चेहरे पर रंग-रोगन कर रही है, उसके मंत्री झूठे विकास के कसीदे पढ़े रहे हैं, नारा दिया जा रहा है 'एक वर्ष-सर्वत्र हर्ष। लेकिन जमीन स्तर पर जनता के सामने इन नारों की पोल खुल रही है। आम आबादी समझ चुकी है कि मोदी सरकार की तरह खट्टर सरकार के चुनावी वादे भी सिर्फ जुमले थे। हरियाणा विधानसभा चुनाव में भाजपा ने जनता से 150 से ज्याद वादे किये हैं। खट्टर सरकार के कुछ बुनियाद वादों और हकीकत को देखकर तस्वीर साफ हो जाएगी कि 'सर्वत्र हर्ष'कहां और किसके लिए है। आज भी सरकारी स्कूलों 40 हजार से ज्यादा शिक्षक और सहयोगी कर्मी ठेके पर हैं। चुनाव से पहले शिक्षामंत्री रामविलास शर्मा सरकार बनते ही गेस्ट टीचरों को एक कलम से पक्का करने का वादा कर रहे थे। लेकिन सरकार ने आते ही 4073 से ज्याद गेस्ट टीचर्स को ''सरप्लस'बताकर निकाल दिया। डिजिटल इण्डिया का नारे देने वाली सरकार ने 2852 कम्प्यूटर टीचरों, 2600 लैब सहायकों को नौकरी से हटा दिया। नयी शिक्षा नीति के तहत 300 से ज्यादा सरकारी स्कूल बन्द करने का नोटिस दे दिया। सरकारी स्कूली पाठ्यक्रम में साम्प्रदायिक जहर घोलने के लिए संघ प्रचारक दीनानाथ बत्रा की घोर अवैज्ञानिक, साम्प्रदायिक किताबों शामिल कर दी गई।

हुड्डा राज में स्वास्थ्य विभाग भी डाक्टरों और सहायक कर्मी वजह से बदतर हालात में था अब खट्टर सरकार ने स्वास्थ्य विभाग में नेशनल स्वास्थ्य मिशन के 50 प्रतिशत स्टाफ को निकालने का फरमान जारी कर दिया। यानी ज्यादातर आबादी को प्राईवेट अस्पतालों में लुटने-मरने के लिए छोड़ दिया है। वहीं चुनाव में रोज़गार और बेरोज़गारी भत्ते के वादे और खट्टर सरकार की कथनी-करनी में जमीन-असमान का अन्तर है। हरियाणा रोजगार कार्यालय के अनुसार प्रदेश 8 लाख से ज्यादा बेरोजगार आबादी है असल में ये सिर्फ सरकारी कार्यालय में दर्ज आबादी जबकि कई लाख आबादी अपना नाम दर्ज नहीं करती है चुनाव वादों में खट्टर सरकार ने 6000 और 9000 हजार बेरोजगारी भत्ता देने का वादा किया था लेकिन एक साल बाद भी बेरोजगारी भत्ते का नामो-निशान नहीं है।

प्याज और दाल के असमान छूती कीमतों के बाद तीन गुण बिजली बिलों में वृद्धि करके मध्यमवर्ग आबादी पर भी मँहगाई का बुलडोजर चला दिया हैं। साथ ही खट्टर सरकार जनता को बांटने के लिए अटाली, मेवात और हिसार जैसी साम्प्रदयिक राजनीति को संरक्षण दे रही है, सोनीपत-गोहाना-हिसार में दलित उत्पीड़न की घटनाएँ सरकार का दलित-विरोधी चेहरा बेनकाब कर रही है। असल में भाजपा और संघ परिवार ''फूट डालो और राज करो'की नीति पर ही जनता को ठगते रहे हैं। और मौजूदा खट्टर सरकार भी जनता की पाई-पाई निचोड़ने का काम धर्म, राष्ट्रवाद और प्राचीन-संस्कृति की चादर ओढ़कर कर रही है। वैसे भी भाजपा और संघ परिवार की सारी देश-भक्ति देशी-विदेशी पूँजीपतियों के लिए है तभी मज़दूरों के श्रम कानूनों खत्म करने से लेकर गरीब किसानों की जमीनें छीनकर पूँजीपतियों को सौंपी जा रही है। विपक्ष में रहकर एफडीआई का विरोध करनी वाली भाजपा रक्षा, बीमा, रेलवे आदि क्षेत्रों खुलकर विदेशी पूँजी को ला रही है। ऐसे में हमें सभी चुनावी मदारियों का पर्दाफाश करना होगा। और शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य जैसे मुद्दों पर जनता के संघर्ष को एकजुटता करने के लिए आगे आना होगा।

– रमेश

दमनकारी पंजाब सरकार ने जनता पर थोपा काला कानून

हक़, सच्चाई और इंसाफ़ के लिए जूझ रहे लोगों के लिए एक बड़ी चुनौती

22 जुलाई 2014 को पंजाब विधान सभा में पारित किया गया फासीवादी काला कानून 'पंजाब (सार्वजनिक व निजी सम्पत्ति नुक़सान रोकथाम) कानून-2104' आखिर केन्द्र सरकार द्वारा पारित कर दिया गया है। कुछ दिन पहले राष्ट्रपति ने इस पर हस्ताक्षर कर दिए है। बढ़ते आर्थिक व राजनीतिक संकट व जनाक्रोश के इस वक़्त में पंजाब के हुक्मरानों को हकों के लिए जूझ रहे लोगों पर दमन का कहर ढाने के लिए एक और जबरदस्त हथियार मिल गया है।

इसके खिलाफ़ मज़दूरों, किसानों, नौजवानों, छात्रों, सरकारी मुलाजिमों, बुद्धिजीवियों, स्त्रियों आदि तबकों के जनसंगठनों के 'काला कानून विरोधी संयुक्त मोर्चा, पंजाब' के संयुक्त बैनर तले जोरदार संघर्ष लड़ा गया था। इस काले कानून के खिलाफ़ अन्य मंचों से भी संघर्ष किया गया था। उस समय पंजाब के राज्यपाल ने इसे राष्ट्रपति के पास भेज दिया था। कुछ लोगों को लग रहा था अब यह कानून ठण्डे बस्ते में पड़ा रहेगा। लेकिन इस हथियार को पंजाब के हुक्मरानों ने अचानक बाहर निकालकर पंजाब की जनता के सिर पर मढ़ दिया है। हमने उस समय भी कहा था कि सरकार ने जनता के विरोध के दबाव में 'पंजाब सार्वजनिक व निजी जायदाद नुकसान (रोकथाम) कानून-2010' तो वापिस ले लिया था लेकिस इस बार 'पंजाब (सार्वजनिक व निजी सम्पत्ति नुक़सान रोकथाम) कानून-2104' को हर परिस्थिति में लागू करवाने के मूड में नज़र आ रही है। इस कानून की जरूरत सिर्फ़ पंजाब की अकाली भाजपा सरकार को ही नहीं है बल्कि भारत के पूँजीवादी हुक्मरान वर्ग को है। जो हालात देश भर में बन गए हैं उनके मद्देनज़र यह यकीनन कहा जा सकता है कि केन्द्र व राज्य स्तरों पर पहले से मौजूद काले कानूनों का इस्तेमाल तेज़ होगा और पंजाब के नए काले कानून की तर्ज पर केन्द्र व अन्य राज्यों में काले कानून बनाकर राज्यसत्ता की दमनकारी मशीनरी को और खूँखार बनाया जाएगा। इसलिए सिर्फ पंजाब के लोगों को ही नहीं बल्कि देश भर के जनवाद पसंद लोगों को इस काले कानून के खिलाफ़ आवाज़ बुलन्द करनी चाहिए। पंजाब की जनवादी शक्तियों को तो फिर से विशाल संयुक्त संघर्षों के जरिए जालिम हाकिमों के फासीवादी हमले का मुँह तोड़ जवाब देने के लिए आगे आना ही होगा।

पंजाब सरकार के काले कानून के विरोध में 2014 में हुए साझा प्रदर्शन की तस्वीर

यह क़ानून भारत के बेहद ख़तरनाक क़ानूनों में से एक है। इस क़ानून में कहा गया है कि किसी व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह, संगठन, या कोई पार्टी द्वारा की गयी कार्रवाई जैसे "ऐजीटेशन, स्ट्राइक, हड़ताल, धरना, बन्द, प्रदर्शन, मार्च, जुलूस", रेल या सड़क परिवहन रोकने आदि से अगर सरकारी या निजी जायदाद को कोई नुकसान, घाटा, या तबाही हुई हो तो उस कार्रवाई को नुकसान करने वाली कार्रवाई माना जायेगा। किसी संगठन, यूनियन या पार्टी के एक या अधिक पदाधिकारी जो इस नुकसान करने वाली कार्रवाई को उकसाने, साजिश करने, सलाह देने, या मार्गदर्शन, में शामिल होंगे उन्हें इस नुकसान करने वाली कार्रवाई का प्रबन्धक माना जायेगा। सरकार द्वारा तय किया गया अधिकारी अपने तय किए गये तरीक़े से देखेगा कि कितना नुकसान हुआ है। नुकसान की भरपाई दोषी माने गये व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा अगर नहीं की जाती तो उनकी ज़मीन जब्त की जायेगी। सरकार उपरोक्त जनकार्रवाइयों की वीडियोग्राफ़ी करवायेगी। पहले भी जनकार्रवाइयों की वीडियोग्राफ़ी करवायी जाती रही है लेकिन ऐसा करना ग़ैरक़ानूनी था। अब यह काम क़ानूनी तौर पर जायेगा। इस क़ानून के अन्तर्गत वीडियो को नुकसान होने के सबूत पर पूर्ण मान्यता दी गयी है। यानि अगर कोई और सबूत न भी हो सिर्फ़ वीडियो के आधार पर ही लोगों को दोषी माना जा सकेगा। अन्य क़ानूनों में वीडियो या तस्वीरों को पूर्ण तो दूर की बात, प्राथमिक सबूत की मान्यता भी हासिल नहीं है। वीडियो के साथ आसानी से छेड़छाड़ की जा सकती है इसलिए वीडियो को इस तरह सबूत का दर्जा दिया जाना बेहद ख़तरनाक बात है।

इस क़ानून के तहत हेडकांस्टेबल स्तर के पुलिस मुलाजिम को गिरफ्तारी करने के अधिकार दे दिये गये हैं और जुर्म ग़ैरज़मानती होगा। तीन साल तक की सज़ा और एक लाख रुपए तक का जुर्माना हो सकता है। आगज़नी या विस्फोट से नुकसान होने पर एक वर्ष से लेकर पाँच साल तक की क़ैद और तीन लाख रुपए तक का जुर्माना हो सकता है। इस मामले में अदालत किसी विशेष कारण से कैद की सजा एक वर्ष से कम भी कर सकती है।

'पंजाब (सार्वजनिक व निजी जायदाद नुकसान रोकथाम) क़ानून-2014' के इस ब्यौरे के बाद पाठक इस क़ानून के घोर जनविरोधी फासीवादी चरित्र का एक अन्दाज़ा लगा सकते हैं। आगज़नी, तोड़फोड़, विस्फोट आदि जैसी कार्रवाईयों के बारे में यह कहने की ज़रूरत नहीं है कि ऐसी कार्रवाइयाँ सरकार, प्रशासन, पुलिस, राजनीतिक नेता, पूँजीपति आदि जिनके ख़िलाफ़ संघर्ष लड़ा जा रहा होता है ख़ुद ही करवाते हैं और इन कार्रवाइयों का दोष लोगों पर लगा दिया जाता है। अब इस क़ानून के लागू हो जाने से इस नुकसान की भरपाई संघर्ष कर रहे लोगों से ही की जायेगी और साथ ही जेल और जुर्माने की सजा भी की जायेगी।

सरकार का यह कहना एकदम झूठ है कि यह क़ानून अगजनी, तोड़फोड़, रेल व सड़क यातायात आदि रोकने से होने वाले नुक़सान को रोकने के लिए है। इसका प्रत्यक्ष सबूत यह भी है कि जहाँ इस क़ानून में 'स्ट्राइक, हड़ताल' को नुकसान करने वाले कार्रवाई में शामिल किया गया है वहीं नुकसान को परिभाषित करते हुए 'घाटे' को भी नुकसान में गिना गया है। यानि अब अगर मज़दूर श्रम क़ानून लागू करवाने के लिए, वेतन वृद्धि या अन्य सुविधाओं के लिए, मालिक, पुलिस-प्रशासन, सरकार की गुण्डागर्दी के ख़िलाफ़, महँगाई के विरुद्ध या अन्य किसी मुद्दे पर हड़ताल करते हैं तो हड़ताली मज़दूरों और उनके नेता, हड़ताल में साथ देने वाले अन्य लोग, आदि इस क़ानून के मुताबिक़ यकीनन तौर पर दोषी माने जायेंगे। हड़ताल होगी तो 'घाटा' तो पड़ेगा ही। इस तरह पंजाब सरकार हड़ताल करने को अप्रत्यक्ष ढंग से क़ैद और जुर्माने योग्य अपराध ऐलान कर चुकी है। अपने अधिकारों के लिए संघर्ष का हड़ताल का रूप मज़दूरों के लिए एक अति महत्त्वपूर्ण हथियार है। देश की उच्च अदालतें पहले ही हड़ताल के अधिकार पर हमला बोल चुकी हैं। 6 अगस्त, 2003 के एक फ़ैसले में भारत की सर्वोच्च अदालत ने सरकारी मुलाजिमों द्वारा हड़ताल को ग़ैरक़ानूनी करार दिया था। पंजाब सरकार इससे भी आगे बढ़कर सरकारी व निजी क्षेत्र में हड़ताल करने वालों, इसके लिए प्रेरित करने वालों, मार्गदर्शन करने वालों आदि के लिए सख्त सज़ाएँ लेकर आयी है। इस काले क़ानून का यह पहलू भी इसकी स्पष्ट गवाही है कि सरकार का मक़सद मज़दूरों व अन्य मेहनतकश लोगों के संघर्षों को कुचलना है।

यह क़ानून कितना ख़तरनाक है इसका अन्दाजा इस बात से भी लगाया जा सकता है कि 'नुकसानदेह कार्रवाई' के आयोजन में मदद करने के बहाने से टेण्ट वालों, लाउड स्पीकर वालों, पानी के टैंकर देने वालों, प्रचार सामग्री छापकर देने वालों आदि को भी आसानी से दोषी करार दिया जा सकेगा। अगर एक-दो बार इनमें से किसी को इस क़ानून में घसीटा गया तो संघर्षों के लिए इन चीजों की व्यवस्था करनी बहुत मुश्किल हो जायेगी। इससे रैली, धरना, प्रदर्शन, जुलूस आदि जनकार्रवाइयाँ आयोजित करने में बड़ी मुश्किल खड़ी हो जायेगी।

पूँजीवादी सरकारें काले क़ानून शान्ति व्यवस्था क़ायम रखने, सुप्रशासन, आम लोगों के जान-माल की सुरक्षा जैसे बहानों से बनाया करती हैं लेकिन इनका वास्तविक मकसद पूँजीपति वर्ग के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक हितों की सुरक्षा व मेहनतकश जनता के हितों को कुचलना होता है। पंजाब सरकार द्वारा पारित इस दमनकारी क़ानून से इस बात का अन्दाजा आसानी से लगाया जा सकता है कि देश के हुक़्मरान आने वाले दिनों से कितने भयभीत हैं। जनता के हालात लगातार बिगड़ते जा रहे हैं। हुक़्मरान सबसे अधिक डरते हैं इस गुस्से को संगठित रूप मिलने से। इसे क्रान्तिकारी दिशा मिलने से। कोई और समझे न समझे लेकिन पूँजीपति हुक़्मरान यह अच्छी तरह जानते हैं कि आज जो हालात बने हैं वे जनवादी और क्रान्तिकारी प्रचार, संगठन, जनान्दोलनों व क्रान्तिकारी बदलाव के लिए कितने उपजाऊ हैं।

आज़ाद भारत की राज्यसत्ता – जो अपने जन्म से ही बेहद सीमित जनवादी चरित्र वाली, ज़ालिम व दमनकारी थी – का चरित्र निरन्तर अधिक से अधिक जनविरोधी होता आया है। देशद्रोह, आपातकाल लगाने जैसे क़ानूनों से लैस भारतीय संविधान अपने जन्म से ही एक दमनकारी संविधान है। इसे निरन्तर काले क़ानूनों से "समृद्ध" किया जाता रहा है। टाडा, पोटा, यू.ए.पी.ए., ए.एफ.एस.पी.ए, छत्तीसगढ़ विशेष सुरक्षा क़ानून तो ऐसे क़ानूनों की सिर्फ़ कुछ मिसालें हैं। विचार व्यक्त करने, विरोध और संघर्ष करने की आज़ादी जैसे जनवादी अधिकारों का दायरा जो पहले ही बहुत संकीर्ण था, और भी संकीर्ण किया जाता रहा है। लोगों को विचार व्यक्त करने पर आतंकवादी कह कर जेलों में ठूँसा जाता रहा है और यह जारी है। भारत में रॉ, आई.बी., एन.आई.ए., सी.बी.आई., डी.आई.ए., जे.सी.आई., एन.टी.आर.ओ. समेत एक दर्जन से अधिक केन्द्रीय खुफिया एजेंसियाँ हैं। हर राज्य में खुफिया विभाग और विशेष पुलिस, आतंकवाद विरोधी दस्ते (ए.टी.एस.) आदि आधुनिक दमनकारी औज़ारों से लैस विशाल ढाँचा है। लेकिन भारत की पूँजीवादी हुक्मरान इसे नाकाफ़ी मान रहे हैं। जनाधिकारों की आवाज़ कुचलने के लिए इस दमनकारी ढाँचे को आतंकवाद से लड़ने के नाम पर अधिक दमनकारी बनाया जा रहा है। पंजाब सरकार सन् 2010 में जो 'पंजाब विशेष सुरक्षा क़ानून-2010' लेकर आयी थी वह ए.एफ.एस.पी.ए. से भी ख़तरनाक था। यह क़ानून उस समय तो व्यापक जनसंघर्ष के दबाव में रद्द कर दिया गया था लेकिन यह भी यकीनन कहा जा सकता है कि यह क़ानून भी नजदीक भविष्य में उसी या किसी अन्य रूप में लाया जायेगा। दमनकारी ढाँचे को और दमनकारी बनाना हुक़्मरानों के लुटेरे हितों की न टालने योग्य ज़रूरत है।

लेकिन हाकिमों को किसी भी सूरत में जनान्दोलनों से पीछा छुड़ाने में दमनकारी काले क़ानूनों से कोई मदद नहीं मिल सकेगी। दमनकारी काले क़ानून, जेल, दमन क्या दुनिया की किसी भी ताक़त से जनता के हक़, सच, इंसाफ़ के लिए संघर्ष हमेशा के लिए कुचला नहीं जा सकता। पंजाब की जुझारू जनता दमनकारी हाकिमों के ख़िलाफ़ डटकर लड़ाई लड़ेगी और हाकिमों को थूक कर चाटने के लिए मजबूर करेंगी।

– लखविन्दर

क्या मेहनतकश के लिए "ख़ुशी" का मतलब यही है?

कुछ महीने पहले एक बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनी "एल जी" और एक गैर सरकारी संगठन "आई.एम.आर.बी. इंटरनेशनल" के सर्वे में चंडीगढ़ को भारत का सबसे "ख़ुश रहने वाला" शहर घोषित किया गया। 16 शहरों में किये गये इस सर्वे में चंडीगढ़ के बाद दूसरा स्थान लखनऊ और तीसरा स्थान दिल्ली को मिला। मतलब यह कि इन शहरों में रहने वाले लोग सबसे ज़्यादा ख़ुश रहते हैं। सर्वे में पाया गया कि भारतीयों के लिए सबसे ज़्यादा महत्वपूर्ण चीज "ख़ुशी" है, बाकी चीजें जैसे "आदर", "विश्वास", "सफलता" आदि का नंबर "ख़ुशी" के बाद ही आता है। जाहिर है इस सर्वे में खाया-पिया वर्ग ही शामिल किया गया था क्योंकि मेहनतकश वर्ग के लिए तो पहली प्राथमिकता रोटी होती है, पेट भरा होने पर ही ख़ुशी महसूस की जा सकती है। लेकिन पूँजीवाद को मेहनतकश की ख़ुशी से कुछ लेना देना नहीं होता। उसको मेहनतकश की ज़रूरत सिर्फ इसलिए होती है क्योंकि मेहनतकश अपनी मेहनत से इसके लिए मुनाफ़ा पैदा करता है। इस काम के लिए पूँजीवाद मेहनतकश मज़दूर को सिर्फ मुश्किल से जीने लायक सुविधा ही मुहैया करवाता है जिनसे यह वर्ग बहुत मुश्किल से पेट भी नहीं भर पाता, ऐसे सर्वे में भाग लेना तो बहुत दूर की बात है।

बहरहाल इस "ख़ुशी" का एक दूसरा पहलू भी है। सर्वे में सबसे ख़ुश पाए गये शहर चंडीगढ़ में 5 साल से कम आयु के 50 प्रतिशत बच्चे कुपोषण का शिकार हैं। दूसरे स्थान पर आये लखनऊ में यही आंकड़ा 54 प्रतिशत का है। देश की राजधानी दिल्ली की झुग्गियों में यह आंकड़ा 66 प्रतिशत तक जा पहुँचता है। पूरे देश की बात की जाये तो भारत में यह आंकड़ा 38 प्रतिशत का है। यानि पूरे भारत में करोड़ों बच्चे पर्याप्त मात्रा में भोजन न मिल पाने के कारण कुपोषण का शिकार हैं। जाहिर है कि बच्चे कुपोषित इसीलिए होते हैं क्योंकि उनको भरपेट खाना नहीं मिल पाता। क्योंकि उनके माता पिता दिन रात कमरतोड़ मेहनत करके भी अपने और अपने बच्चों के लिए दो टाइम की रोटी नहीं जुटा पाते। सिर्फ खाना ही नहीं गरीबों को तो पीने के पानी तक के लाले पड़े हुए हैं। गरीबों की बस्तियों और कॉलोनियों में अव्वल तो पानी की सप्लाई ही बहुत कम होती है और जो होती है वो पानी बेहद दूषित होता है। देश के 195,813 घरों को रासायनिक रूप से प्रदूषित पानी पर निर्भर रहना पड़ता है। लगभग 377 लाख भारतीय हर साल पानी से होने वाली बीमारियों से प्रभावित होते हैं। भारत में खराब पानी के कारण होने वाली बीमारियाँ कुल बीमारियों का 59 प्रतिशत है। अगर उपलब्धता की बात की जाये तो दिल्ली में ही औसत प्रति व्यक्ति घरेलू जल की उपलब्धता 200 लीटर है जबकि शहर के 30 फीसदी लोगों को 25 लीटर से भी कम पानी प्राप्त होता है। उच्च वर्ग के लोगों की कार को धोने में कितना ही पानी बर्बाद कर दिया जाता है, वहीं मेहनतकश आबादी सुबह से रात तक टोंटी में पानी आने की प्रतीक्षा करती रहती है.

यह तो हुई बात रोटी और पानी की, जिसके बारे में कहने की ज़रूरत नहीं है, बल्कि ख़ुद भारत सरकार के आंकड़े ही इस सरकारी बेशर्मी की गवाही दे देते हैं। लेकिन जिस तरह से जिन्दा रहने के लिए रोटी पानी की ज़रूरत होती है उसी तरह "रहने" के लिए सर के ऊपर छत की ज़रूरत होती है। यूपीए सरकार के समय से ही शहरों को झुग्गी मुक्त बनाने की योजना पर काम शुरू हो गया था। योजना के अंतर्गत सबसे पहला काम तो यही था कि झुग्गियों को तोड़ दिया जाये। पिछले साल ही मोदी सरकार ने "स्मार्ट सिटी" नाम से एक नया जुमला इसी कवायद में जोड़ दिया। स्मार्ट सिटी मतलब 'स्मार्ट' लोगों के लिए सुंदर और हर सुविधा से परिपूर्ण 'डिजिटलाइज्ड' शहर। लेकिन ये स्मार्ट लोग हैं कौन? ये स्मार्ट लोग हैं खाये पिये अघाये उच्च और उच्च-मध्यम वर्ग के लोग। जाहिर है इस स्मार्ट सिटी को बनाने में सारी मेहनत तो करेंगे मेहनतकश मज़दूर और इसमें रहेंगे उच्च वर्ग के "ख़ुशी वाले सर्वे" में भाग लेने वाले ख़ुशहाल लोग। तो मज़दूर कहाँ जायेंगे? सुंदर स्मार्ट शहर में गरीबों के लिए जगह कैसे हो सकती है?

चंडीगढ़ का ही उदाहरण हमारे सामने है। चलिए देखते हैं कि चंडीगढ़, जोकि 'ख़ुशहाल' और सुंदर तो पहले ही था, को और भी ज़्यादा सुंदर, स्मार्ट और झुग्गीमुक्त बनाने के लिए क्या क्या कदम उठाये जा रहे हैं? आवास और शहरी गरीबी उपशमन मंत्रालय, भारत सरकार के अंतर्गत आने वाले "राष्ट्रीय भवन निर्माण संगठन" के आंकड़ों के अनुसार 2001 में ही चंडीगढ़ की झुग्गियों में 208057 लोग रहते थे। सरकार का कहना था कि इन सभी को झुग्गियों की बजाए अच्छे फ़्लैट मिलने चाहिए। बहुत अच्छी बात है। लेकिन इसके लिए सरकार ने असल में किया क्या? आइये देखें। इन लोगों के लिए 2006 में चंडीगढ़ हाउसिंग बोर्ड एक स्कीम लेकर आया जिसके अंतर्गत चंडीगढ़ को झुग्गी मुक्त बनाया जाना था और 25728 छोटे फ्लैट बना कर झुग्गियों में रहने वाले लोगों को दिए जाने थे। लेकिन इनमे से सिर्फ 12864 फ़्लैट ही बनाये गये और 2014 में हाउसिंग बोर्ड ने फंड की कमी का बहाना बना कर इस स्कीम से पल्ला झाड लिया। इस तरह से प्रशासन ने फ़्लैट बना कर देने से तो हाथ खींच लिया लेकिन चंडीगढ़ को झुग्गी 'मुक्त' बनाने का काम जारी रखा। चंडीगढ़ हाउसिंग बोर्ड के अनुसार चंडीगढ़ में 18 मज़दूर बस्तियाँ थीं जिनमे से 9 बस्तियों और कॉलोनियों को 2009 से 2015 के बीच में तोड़ दिया गया। इनमें से भी 7 बस्तियों को सिर्फ 20 महीने के अंदर ही तोड़ा गया है जिसमें हज़ारों लोग बेघर हुए। नवम्बर 2013 में चंडीगढ़ की सबसे बड़ी और पुरानी कॉलोनी, कॉलोनी नं 5, जो लगभग 100 एकड़ में फैली थी और इसमें लगभग 50 हजार लोग रहते थे, तोड़ दी गयी। हाड़ कँपा देने सर्दी में हजारों परिवार देखते ही देखते सड़क पर आ गये। इनमें से एक चौथाई को ही प्रशासन द्वारा बनाये गये एक कमरे वाले फ्लैटों में जगह मिल पायी। पिछले साल फिर से चंडीगढ़ यानि सिटी ब्यूटीफुल को "ब्यूटीफुल" बनाये रखने के लिए सेक्टर 51 और 52 के साथ लगती 6 मज़दूर बस्तियों को तहस-नहस कर दिया गया। 3700 झुग्गियों को 2000 पुलिसकर्मियों की मदद से प्रशासन ने बात की बात में ज़मींदोज़ कर दिया। हज़ारों लोग बेघर हो गये। चंडीगढ़ को ख़ुशनुमा और सुंदर बनाने के लिए इन लोगों ने ही मेहनत की थी लेकिन अब ख़ुश लोगों के शहर को इनकी ज़रूरत नहीं रह गई थी। पिछली बार यह काम नवम्बर की सर्दी में हुआ तो इस बार मई की तपती गर्मी में हजारों लोगों को उनके घरों से बाहर कर दिया गया।

प्रशासन का बहाना यह था कि झुग्गियों की जगह लोगों को फ़्लैट दिये जायेंगे लेकिन हक़ीक़त में प्रशासन ने फ़्लैट देने के लिए इतने नियम क़ानून अड़ा दिये कि अधिकतर लोगों को कुछ नहीं मिला। प्रशासन का कहना है कि सरकारी फ़्लैट सिर्फ उन लोगों को दिये जायेंगे जिनके पास प्रमाणपत्र या झुग्गी के कागज़ होंगे। दूसरा जिन लोगों के पिछले चुनाव में मतदाता सूची में नाम होंगे। तीसरा कुछ समय पहले प्रशासन ने झुग्गियों में रहने वाले लोगों के बायोमेट्रिक फिंगर प्रिंट लिए थे। अब मकान उन्हीं को मिलेंगे जिनके फिंगर प्रिंट होंगे। लेकिन सबको पता होता है कि झुग्गियों में रहने वाले अधिकतर लोगों के पास कोई पहचान पत्र जैसा कुछ नहीं होता। दूसरा बायोमेट्रिक फिंगर प्रिंटिंग में भी सभी के फिंगर प्रिंट नहीं लिये गये थे। ऐसे में ये सभी मापदंड पूरे करना अधिकतर के लिए संभव ही नहीं था। साफ है कि प्रशासन असल में सबको मकान देना ही नहीं चाहता था। उसका मकसद तो शहर से झुग्गी रूपी "गंदगी" को साफ करना था। बहरहाल गरीबों कुछ मिलना नहीं था सो नहीं मिला। इस तरह से सबकुछ छिन जाने के बाद कुछ लोग तो वापस अपने गांवों में चले गये लेकिन ज़्यादातर लोग दशकों से यहीं रह रहे थे जिनके पास इसके अलावा और कोई जगह थी ही नहीं जाने की। हजारों बच्चों को स्कूलों से नाम कटाना पड़ा। लोगों ने अपनी तरफ से बात समझाने की कोशिश भी की लेकिन प्रशासन के कानों पर जूं तक नहीं रेंगी। लेकिन बात सिर्फ इतनी ही नहीं है। जिन लोगों को फ़्लैट दिये भी गये हैं वे भी कोई मुफ़्त नहीं हैं। इनकी लागत भी सरकार किश्तों के रूप में उन्हीं गरीबों से वसूलने वाली है। मुश्किल से दो वक़्त की रोटी का जुगाड़ कर पाने वाले लोग ये किश्तें कैसे चुका सकते हैं? लेकिन यह कहानी सिर्फ चंडीगढ़ की नहीं है बल्कि पूरे देश की है। दो साल पहले बंगलूरू में भी इजीपुरा नामक मज़दूर बस्ती को प्रशासन और रियल स्टेट माफिया की मिलीभगत से उजाड़ दिया गया। 1500 परिवारों के लगभग 8000 लोग पलक झपकते ही बेघर हो गये। 2009 में समयपुर बादली, दिल्ली के सूरजपुर इलाके की झुग्गी को सुरक्षाबलों के 1500 जवानों की मदद से तोड़ दिया गया था और लगभग 5000 लोग सडक पर आ गये थे। इन लोगों को यहाँ से इसलिए हटाया गया था क्योंकि यहाँ कॉमनवेल्थ खेलों के लिए कोई निर्माण किया जाना था, ताकि दूसरे लोग खेल देख कर "ख़ुश" हो सकें। कॉमनवेल्थ खेलों के नाम पर दिल्ली से 2 लाख से भी ज़्यादा लोगों को उजाड़ दिया गया। यही कहानी दिसम्बर 2015 में फिर दोहराई गयी जब मोदी सरकार के रेलवे ने शकूरपुर में 500 झुग्गियों को रौंदकर हज़ारों लोगों को भयंकर सर्दी में सड़कों पर धकेल दिया।

जहाँ एक तरफ प्रशासन की यह दमनकारी कार्रवाई चल रही थी, वहीं दूसरी ओर बिग बॉस और ए.आई.बी. जैसे वाहियात कार्यक्रम चलाने वाले मीडिया ने इसको दिखाना तक ज़रूरी नहीं समझा। कुछ न्यूज़ चैनलों और अख़बारों ने ख़बर को जगह भी दी तो ऐसे कि जैसे कसूर असल में इन्हीं झुग्गी वालों का था। न्यूज़ चैनलों ने बेशर्मी से प्रचारित किया कि झुग्गियों का हटना ख़ुशख़बरी है और 'सिटी ब्यूटीफुल' अब सही मायने में ब्यूटीफुल बनेगा। शहर की ज़मीन पर झुग्गी वालों ने कब्ज़ा कर रखा था जो प्रशासन के अथक प्रयासों के बाद छुट पाया है। एक दो अख़बारों ने तो यह तक लिखा कि झुग्गियों में रहने वाले लोग ग़रीब नहीं बल्कि खाते-पीते अमीर हैं क्योंकि उनके घरों में "ऐयाशी के साधन" यानी रंगीन टेलीविज़न थे। ये लोग जानबूझ कर शहर को 'गंदा' करते हैं। सिर्फ मीडिया ही नहीं खाये-पिये-अघाये वर्ग का एक बड़ा तबका भी इसी तरह बस्ती वालों को ही शहर को गन्दा करने के लिए ज़िम्मेवार ठहरा रहा था।

पूँजीवाद का यह निर्मम रूप है जहाँ एक तरफ़ ख़ुशी दिखाने के सर्वे किये जाते हैं और दूसरी तरफ मेहनतकश वर्ग के लोगों के सर से छत और उनके बच्चों के मुँह से निवाला छीन लिया जाता है। क्या इन लोगों से पूछा जाता है कि ये कितने ख़ुश हैं? मेहनतकश की यही आबादी हर तरह के उत्पादन के लिए दिन रात हाड़तोड़ मेहनत करती है। इसी आबादी के खून-पसीने से चंडीगढ़ जैसे शहरों की सुन्दरता बन पाती है और इन शहरों में रहने वाले खाये-पिये-अघाये वर्ग की 'ख़ुशहाली' होती है। लेकिन यही आबादी अपने बच्चों के लिए रोटी तक जुटा नहीं पाती और अब तो हालात ये हैं कि इस आबादी के सर पर कच्ची छत तक नहीं रहने दी जा रही। खाये-पिये वर्गों की ख़ुशी के लिए करोड़ों मेहनतकश पूँजीवाद का यह अभिशाप झेलने को मजबूर हैं। ऐसे में ज़रूरी है कि मानवता का ख़ून पीने वाली मुनाफ़े पर टिकी हुई इस पूँजीवादी व्यवस्था को उखाड़ फेंका जाये और मेहनतकश के लोक स्वराज का निर्माण किया जाये। केवल तभी मानवता को इस अभिशाप से मुक्ति मिल सकती है।

- नवमीत

उधारी साँसों पर पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को जीवित रखने के नीम-हकीमी नुस्खे

(पेज 1 से आगे)

दाँव पर लग रही है। कांग्रेस ने प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के लिए जो शर्तें रखी थीं, मोदी सरकार ने उसे और भी ढीला कर दिया है। पहले यह शर्त थी कि तीन हज़ार करोड़ रुपये से अधिक के प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के लिए सरकार द्वारा जाँच-पड़ताल का सामना करना पड़ेगा। मोदी सरकार ने यह सीमा बढ़ाकर पाँच हज़ार करोड़ रुपये कर दी है।

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को छूट देते हुए यह कहा जा रहा है कि इससे भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास होगा, नये रोज़गार पैदा होंगे, जनता की ग़रीबी दूर होगी, ख़ुशहाली आयेगी, जनता का जीवन स्तर ऊपर उठेगा आदि-आदि। वास्तव में जनता की ख़ुशहाली की तो सिर्फ़ बातें ही हैं। जनता का जीवन स्तर सुधारना न तो मोदी सरकार का मकसद है और न ही इसकी नीतियों से यह संभव है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को प्रोत्साहन जनता के नहीं बल्कि लुटेरों के, मुट्ठी भर पूँजीपति वर्ग के कल्याण के लिए दिया जा रहा है।

पूँजीवादी व्यवस्था आज विश्व स्तर पर आर्थिक मंदी से जूझ रही है। इसका सीधा असर भारतीय अर्थव्यवस्था पर भी है। यह भी आर्थिक मंदी से जूझ रही है। भारतीय अर्थव्यवस्था में सकल घरेलू उत्पादन में अपेक्षित वृद्धि होती दिखाई नहीं दे रही। व्यापारिक घाटा बढ़ रहा है। विदेशी मुद्रा भंडार सिकुड़ा हुआ है। इस पूरी परिस्थिति में भारतीय अर्थव्यवस्था को देशी-विदेशी पूँजी निवेश में वृद्धि की सख़्त ज़रूरत है। सकल घरेलू उत्पादन में वृद्धि, आधारभूत ढाँचे के क्षेत्र आदि में अटकी हुई परियोजनाओं को आगे बढ़ाने के लिए, विदेशी मुद्रा भंडार में वृद्धि के लिए, उन्नत तकनीक की भारतीय पूँजीपतियों की ज़रूरतों को पूरी करने आदि के लिए ही विदेशी पूँजी निवेश की सख़्त ज़रूरत है।

मोदी सरकार देशी-विदेशी पूँजीपतियों के लिए भारत में अनुकूल माहौल बनाने की ज़ोरदार कोशिशों में लगी हुई है। इस अनुकूल माहौल का अर्थ है बेहिसाब मुनाफ़े की गारंटी। इसलिए मज़दूरों के क़ानूनी श्रम अधिकारों को ख़त्म किया जाना बेहद ज़रूरी है। केंद्र और राज्य सरकारें इस तरफ़ बड़े कदम उठा रही हैं। श्रम क़ानूनों पर अमल तो पहले ही बन्द हो चुका है। श्रम क़ानूनों में मज़दूर विरोधी बदलाव लाकर रही-सही कसर भी निकाली जा रही है। रेलवे और बस परिवहन, स्वास्थ्य, शिक्षा, बैंकिंग, आदि क्षेत्रों में निजीकरण की प्रक्रिया लगातार जारी है। सरकार द्वारा जनता से सस्ती सुविधाएँ छीनने और पूँजीपतियों को अधिक से अधिक आर्थिक छूटें देने का सिलसिला लगातार जारी है। देशी-विदेशी पूँजीपतियों को कम से कम कीमतों पर और बिना किसी रोक-टोक के ज़मीन मुहैया कराने के लिए सरकार पूरा ज़ोर लगा रही है। नये कारोबार शुरू करने और पुराने कारोबारों के फैलाव के लिए सरकारी स्तर पर कागज़ी कार्यवाही को सरल से सरल किया जा रहा है। देश भर में एक ही टैक्स प्रणाली लागू करने के लिए पूँजीवादी वर्ग को बड़ी राहत देने की कोशिश चल रही है। माल और सेवाएँ कर (जीएसटी) पर सभी चुनावी पार्टियों की सहमति है क्योंकि यह उनके आक़ाओं, यानी देश के पूँजीपतियों के हित में है। बस छोटी-मोटी चीज़ों पर मोलभाव और अपना सिक्का बुलन्द रखने का खेल जारी है। जब चाहे कारोबार शुरू कर सकें और जब चाहे बंद करके सभी मज़दूरों को बाहर कर सकें, ऐसी छूट देने के लिए ज़रूरी कानूनी बदलाव किये जा रहे हैं। "इंस्पेक्टर राज" के ख़ात्मे की प्रक्रिया तेज़ कर दी गयी है। अलग-अलग सरकारी विभागों द्वारा कारोबारों में दखलन्दाज़ी (जाँच-पड़ताल, क़ानूनों के उल्लंघन के लिए कार्रवाई) आदि से छुटकारा दिलाया जा रहा है। सरकारी ढाँचे में भ्रष्टाचार के चलते देशी-विदेशी पूँजीपतियों को आने वाली समस्याएओं से निजात दिलाने के लिए कदम उठाये जा रहे हैं। यानि देशी-विदेशी पूँजीपतियों को भारत में कारोबार करने और मज़दूरों-मेहनतकशों के श्रम की लूट से अथाह मुनाफ़ा कमाने के रास्ते से तमाम रुकावटों को दूर करने की कोशिशें की जा रही हैं।

लेकिन ऐसी तमाम कोशिशें के बावजूद मोदी जिस स्तर के विदेशी पूँजी निवेश की उम्मीद में कटोरा लेकर विदेशों के चक्कर लगा रहे हैं वह कभी पूरी नहीं हो सकेंगी। आर्थिक मंदी के झटके खा रहे विदेशी पूँजीपतियों से भारत में ज्यादा पूँजी निवेश की उम्मीद बेमानी है। भारतीय हुक्मरान प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को छूटें देने जैसे नीम-हकीमी नुस्खों के द्वारा भारतीय पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को थोड़ी सी राहत, दुख में "सुख" के कुछ पल तो मुहैया करा सकते हैं, परन्तु आर्थिक मंदी से छुटकारा हरगिज़ नहीं दिला सकते।

उत्पादन के साधनों के निजी मालिकाने और उत्पादन के समाजीकरण के अन्तर्विरोध से पैदा हुआ अति-उत्पादन का संकट पूँजीवादी व्यवस्था का ढाँचागत संकट है। यह संकट पूँजीवादी प्रणाली के अन्त के साथ ही ख़त्म हो सकता है। विश्व पूँजीवादी व्यवस्था अब जिस स्तर तक पहुँच चुकी है वहाँ अब मन्दी के बाद आने वाली तेज़ी और ख़ुशहाली के दिन इसके नसीब में नहीं हैं। लगातार जारी मन्दी के बीच में ही थोड़ा उतार-चढ़ाव होता रह सकता है। आर्थिक संकट से बचने के लिए विदेशी पूँजी निवेश और अन्य नीम-हकीमी नुस्खे पूँजीवादी प्रणाली के संकट को और गहरा व व्यापक बनायेंगे। ऐसे कदमों से भारत में जो पूँजीवादी विकास होगा वह अति-उत्पादन के और बड़े संकट को जन्म देगा। समाज में वर्गीय ध्रुवीकरण और तेज़ होगा। इसके चलते छोटे मालिकाने वाले लोग और अधिक तेज़ी से उजड़कर मज़दूर वर्ग में शामिल होंगे। समाज और बड़े स्तर पर पूँजीपति वर्ग और मज़दूर वर्ग के दो ध्रुवों में बँटेगा। समाज में अमीरी और ग़रीबी का विभाजन, बेरोज़गारी, बदहाली और बढ़ेगी। जनता का आक्रोश और तेज़ होगा।

कुल मिला कर मोदी द्वारा पूँजीवादी ढाँचे का संकट दूर करने के लिए जो भी कदम उठाए जा रहे हैं उनके चलते यह संकट दूर नहीं हो सकता। पूँजीवादी प्रणाली की मुसीबतें लगातार बढ़ते जाना इसकी नियति है।

– लखविन्दर

पंजाब सरकार द्वारा "इंस्पेक्टर राज" के ख़ात्मे का ऐलान

पूँजीपतियों के हित में मज़दूरों-मेहनतकशों के हकों पर डाका

(पेज 4 से आगे)

हालत यह है कि पंजाब समेत पूरे देश में पूँजीपति पहले ही अलग -अलग स्तर के कानूनों की सरेआम धज्जियाँ उड़ा रहे हैं। श्रम कानूनों की बात करें तो देश के पाँच प्रतिशत मज़दूरों को भी श्रम कानूनों के अंतर्गत न्यूनतम वेतन, आठ घण्टे कार्यदिवस, ओवरटाईम, साप्ताहिक व अन्य छुट्टियों, ई.एस.ई., पी.एफ., हाज़िरी, पहचान पत्र, काम के दौरान हादसों और बीमारियों से सुरक्षा के प्रबंध, मुआवज़ा, आदि कानूनी श्रम अधिकार प्राप्त नहीं होते हैं। औद्योगिक इलाकों में पहले ही बड़े स्तर पर पूँजीपतियों का जंगल राज कायम हो चुका है। मज़दूरों द्वारा हक मांगने पर पूँजीपतियों के निजी गुंडों और पुलिस द्वारा उनका दमन किया जाता है। श्रम विभागों और श्रम अदालतों के अफ़सरों-कर्मचारियों की संख्या इस हद तक घटा दी गई है कि इनका अस्तित्व सिर्फ़ नाम मात्र का ही है। अन्य विभागों के इंस्पेक्टरों और अन्य आधिकारियों की तरह श्रम विभाग के अफ़सर कारखानों में ''मुआइनो '' का दिखावा करने जाते हैं। आमतौर पर पूँजीपतियों के ख़िलाफ़ कोई कार्यवाही नहीं होती। यदि होती भी है तो बहुत मामूली होती है। व्यापारिक इकाईयाँ के बारे में भी यह स्थिति हू-ब्-हू लागू होती है। इन आधिकारियों को पूँजीपतियों द्वारा रिश्वतों के बड़ी-बड़ी दी जाती हैं।

श्रम विभाग के साथ-साथ अन्य विभागों के बारे भी यही सत्य है। आय कर, प्रदूषण नियंत्रण, बिजली, इमारतें, ख़ुराक आदि प्रत्येक विभागों से सम्बन्धित कानूनों की पूँजीपति जी भर कर धज्जियाँ उड़ाते हैं। इन विभागों से सम्बन्धित अफ़सरों को रिश्वतों के बड़े पैमाने पर घूस दी जाती है। पूँजीपतियों द्वारा विभिन्न कानूनों की किस स्तर पर धज्जियाँ उड़ाई जाती हैं इसका अंदाज़ा तो पंजाब सरकार के बयानों से भी लगाया जा सकता है। सरकार मानती है कि पंजाब के ढाई लाख व्यापारियों में से बहुत कम ही टैक्स नियमों की पालना करते हैं। सिर्फ़ 900 व्यापारियों ने एक वर्ष के वैट के तौर पर एक करोड़ से भी ज्यादा की राशि जमा करवाई है।

कहने की ज़रूरत नहीं है कि श्रम कानूनों का उल्लंघन, अफसरों को दी जाने वाली रिश्वत आदि ने मज़दूरों पर बड़ा आर्थिक बोझ डाला हुआ है। उनकी ज़िंदगी हद से बदतर कर रखी है। मज़दूरों की आमदन इतनी कम है कि वह अपनी, बुनियादी जरूरतें भी पुरी नहीं कर पाते। कारखानों में रोज़मर्रा भयानक हादसे होते हैं जिनमें मज़दूर बड़ी संख्या में मारे जाते हैं, ज़ख़्मी और अपाहिज होते हैं। पूँजीपतियों द्वारा नियम -कानूनों की उलंघनायों का बोझ सिर्फ़ मज़दूरों को ही झेलना नहीं पड़ रहा बल्कि समाज के दूसरे गरीब मेहनतकश तबकों को भी इसकी मार झेलनी पड़ रही है। पूँजीपतियों द्वारा टैक्सों की बड़ी स्तर पर चोरी का बोझ वास्तव में सारी मेहनतकश जनता पर पड़ता है। सरकारी खजाने में पड़े घाटो का बहाना बना कर सरकार एक तरफ़ लोगों को दी जाने वाली सहूलतों पर कट लगाती है और दूसरी तरफ़ जनता पर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष करों का बोझ बढ़ा दिया जाता है।

लेकिन पूँजीपतियों की मुनाफे की भूख कभी भी शांत नहीं होती। वह और बड़े स्तर पर मुनाफे लूटना चाहते हैं। इसलिए ज़रूरी है कि जो थोड़े से भी श्रम कानून उनको लागू करने पड़ते हैं उससे भी उन्हें छुटकारा मिले। मज़दूर एकजुट होकर पूँजीपतियों को काम कानूनों के अंतर्गत कुछ चीजें लागू करने के लिए मजबूर कर देते हैं। श्रम विभाग पर दबाव बना कर मज़दूर संगठन इंस्पेक्टरों से कारखाने का मुआइना करवा देते हैं और कई बार ताकत के मुताबिक पूँजीपतियों के ख़िलाफ़ कार्यवाही कराने में मज़दूरों को कामयाबी भी मिल जाती है। मुआइना नियमों में बदलाव द्वारा पूँजीपति इस झंझट से छुटकारा हासिल करना चाहते हैं। न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी।

विभिन्न विभागों के अफसरों को दी जाने वालीं रिश्वतों के कारण मुनाफे बँट जाते हैं। मुनाफे का एक ठीक-ठाक हिस्सा सरकारी अफसरों -इंस्पेक्टरों की जेबों में चले जाने से उद्योगपति और व्यापारी काफ़ी दिक्कत में हैं। वह चाहते हैं मज़दूरों की लूट का सारा माल उन्हीं के पास ही रहे। इस मकसद के अंतर्गत सरकारी ढंाचे में से भ्रष्टाचार के ख़ात्मे के लिए ज़ोर लगाया जा रहा है। कुछ समय पहले अन्ना हज़ारे-केजरीवाल को आगे करके बड़े स्तर पर चलाई गई ''भ्रष्टाचार विरोधी'' मुहिम, जिसमें पूँजीपति वर्ग ने मीडिया की बड़ी ताकत झोंक दी थी, पीछे यह एक बड़ा कारक था।

अपनी, उपरोक्त मुसीबतों से छुटकारा पाने के लिए ही पूँजीपतियों द्वारा ''इंस्पेक्टर राज'' के ख़ात्मे के लिए चीख-चिल्लाना हो रहा है और उनकी सेवक भाजपा, अकाली दल, कांग्रेस, आप जैसी सभी वोट-बटोरू राजनैतिक पार्टियाँ और सरकारें उनकी सुर में सुर मिला रही हैं।

मौजूदा समय में जब पूरी विश्व पूँजीवादी व्यवस्था में आर्थिक संकट के बादल छाये हुए हैं, भारतीय अर्थव्यवस्था भी लड़खड़ा रही है, मुनाफे सिकुड़ रहे हैं, सकल घरेलू गतिरोधव गिरावट का शिकार है, तब भारत के पूँजीवादी हुक्मरान देसी -विदेशी पूँजी के लिए भारत में साजगार माहौल के निर्माण की कोशिश में लगे हुए हैं। आर्थिक सुधारों में बेहद तेज़ी भारतीय पूँजीवादी हुक्मरानों की इन्हीं कोशिशों का हिस्सा है। ''इंस्पेक्टर राज'' के ख़ात्मे की प्रक्रिया में तेज़ी लाने का भी यही कारण है।

आज मज़दूरों द्वारा भी पूँजीपति वर्ग के इस हमले के ख़िलाफ़ ज़ोरदार हल्ला बोलने की ज़रूरत है। ज़रूरत तो इस बात की है कि पहले से मौजूदा श्रम अधिकारों को तुरंत लागू किया जाये, श्रम अधिकारों को विशाल स्तर पर और बढ़ाया जाये। ज़रूरत इसकी है कि पूँजीपतियों पर बड़े टेक्स बढ़ाकर सरकार द्वारा जनता को बड़े स्तर पर सहूलतें मिलें। ज़रूरत इस बात की है कि पूँजीपतियों द्वारा मज़दूरों-मेहनतकशों की मेहनत की लूट पर लगाम कसने के लिए कानून सख़्त किए जाएँ। इन कानूनों के पालन के लिए अपेक्षित ढाँचा बनाया जाए। परन्तु पूँजीपतियों की सरकारों से जो उम्मीद की जा सकती है वह वही कर रही हैं - पूँजीपति वर्ग की सेवा। मज़दूर वर्ग यदि आज पूँजीवादी व्यवस्था के भीतर कुछ थोड़ी-बहुत भी राहत हासिल करना चाहता है तो उसको मज़दूरों के विशाल एकजुट आन्दोलन का निर्माण करना होगा। पूँजीपति वर्ग द्वारा मज़दूर वर्ग पर बड़े एकजुट हमलों का मुकाबला मज़दूर वर्ग द्वारा जवाबी बड़े एकजुट हमले द्वारा ही किया जा सकता है।

– रणबीर

संसद में 6 मजदूर-विरोधी क़ानून पारित कराने में जुटी मोदी सरकार

देशी-विदेशी लुटेरों की ताबेदारी में मजदूर-हितों पर सबसे बड़े हमले की तैयारी

(पेज 1 से आगे)

अधिकारों से भी वंचित करके पूँजी के ऐसे गुलामों में तब्दील कर दिया गया है जो बस मालिकों की तिजोरियाँ भरने के लिए ज़िन्दा रहते हैं।

मज़दूरी पर हमला

सबसे बड़ा बदलाव मज़दूरी से सम्बन्धित क़ानूनों में होने वाला है। प्रस्तावित 'मज़दूरी पर श्रम संहिता' चार मौजूदा क़ानूनों की जगह लेगी – न्यूनतम मज़दूरी क़ानून 1948, मज़दूरी भुगतान क़ानून 1936, बोनस भुगतान क़ानून 1965 और समान वेतन क़ानून 1976। एक ही विषय से जुड़े कई क़ानूनों की जगह पर एक नया क़ानून बनाने के पीछे तर्क दिया जा रहा है कि इससे अलग-अलग क़ानूनों में मौजूद आपसी अन्तरविरोध दूर होंगे। लेकिन इस आड़ में बहुत सी बातों पर पर्दा डाला जा रहा है। न्यूनतम मज़दूरी क़ानून 1948 के तहत केन्द्र और राज्य सरकारें, दोनों ही अलग-अलग क्षेत्रों में न्यूनतम मज़दूरी तय कर सकती हैं। 45 क्षेत्र केन्द्र के दायरे में आते में हैं और 1679 क्षेत्र राज्यों के अधिकार-क्षेत्र में हैं। लेकिन 'मज़दूरी पर श्रम संहिता' विधेयक में न्यूनतम मज़दूरी तय करने का अधिकार सिर्फ़ राज्य सरकारों को देने की बात है। इसमें सभी के लिए बाध्यकारी राष्ट्रीय तल स्तरीय न्यूनतम मज़दूरी तय करने को लेकर पिछले कई वर्षों से जारी चर्चाओं को गोल ही कर दिया गया है। बाध्यकारी राष्ट्रीय तल स्तरीय न्यूनतम मज़दूरी का प्रावधान विकसित औद्योगिक देशों में भी लम्बे समय से मौजूद है। कोई भी राज्य सरकार इस बुनियादी मज़दूरी से ऊपर मज़दूरी तय कर सकती है लेकिन इससे नीचे नहीं। इसके न रहने से राज्य सरकारें मनमानी मज़दूरी तय करने के लिए आज़ाद होंगी और अपने-अपने राज्य में निवेश के लिए उद्योगपतियों को आमन्त्रित करने के लिए मज़दूरी कम करने की होड़ में मज़दूरों की बलि चढ़ा देंगी। अर्जुन सेनगुप्त की अध्यक्षता में बने असंगठित क्षेत्र में उद्यमों के लिए राष्ट्रीय आयोग के सदस्य रहे प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डा. रवि श्रीवास्तव का कहना है कि अधिकतर राज्यों में वेतन बोर्ड खस्ताहाल हैं और उनमें वर्षों से अनेक पद खाली पड़े हैं। ऐसे में मज़दूरी तय करने का ज़िम्मा राज्य सरकारोंको दे देने से भला किसे फ़ायदा होगा।''

भारत के मज़दूरों का माँगपत्रक-2011 में माँग की गयी थी कि एक राष्ट्रीय न्यूनतम मज़दूरी नीति अविलम्ब बनायी जाये। इसके लिए एक त्रिपक्षीय आयोग (सरकार के प्रतिनिधि, मालिकों के प्रतिनिधि और मज़दूरों के प्रतिनिधि) गठित किया जाये जो देश के मज़दूरों, अर्थशास्त्रियों, श्रम-विशेषज्ञों और उद्योगपतियों से विचार-विमर्श के बाद न्यूनतम मज़दूरी तय करे। (क) क्षेत्रीय विविधाताओं के नाम पर न्यूनतम मज़दूरी में अन्तर का तर्क रद्द करके, सरकारी नौकरियों की तर्ज़ पर, देशभर में एक ही न्यूनतम मज़दूरी तय करने की प्रक्रिया पूरी होने तक केन्द्र सरकार ऐसे दिशा-निर्देश एवं मानदण्ड तय करे, जिनके दायरे में रहकर न्यूनतम मज़दूरी तय करना राज्य सरकारों के लिए बाध्यताकारी हो। (ख) इसके लिए संवैधानिक प्रावधानों और क़ानूनों में आवश्यक संशोधन किये जायें। महानगरों और दुर्गम क्षेत्रों में होने वाले अतिरिक्त खर्चों की भरपाई के लिए सभी प्रकार के कामगारों को विशेष भत्ते दिये जायें।

इसमें यह भी कहा गया था कि 15वें राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन (1957) की सिफ़ारिशों के अनुसार, न्यूनतम मज़दूरी ज़रूरतों के आधार पर तय होनी चाहिए थी। इसके लिए ये मानदण्ड सुझाये गये थे: प्रत्येक कमाने वाले पर तीन उपभोग इकाइयों के लिए प्रति इकाई न्यूनतम 2700 कैलोरी के हिसाब से खाद्यान्न-आवश्यकता, प्रति परिवार सालाना 72 गज कपड़ा, सरकारी औद्योगिक आवास योजना के अन्तर्गत दिये जाने वाले न्यूनतम क्षेत्रफल वाले घर का बाज़ार दर पर जितना किराया हो उतना किराया, तथा ईंधन, बिजली व अन्य विविध खर्चों पर कुल न्यूनतम मज़दूरी का 20 प्रतिशत। इसके अतिरिक्त, सुप्रीम कोर्ट के 1991 के एक निर्णय (रेप्टाकोस ब्रेट्ट एण्ड कं. बनाम मज़दूर) के अनुसार, बच्चों की शिक्षा, दवा-इलाज, उत्सवों-त्योहारों सहित न्यूनतम मनोरंजन, बुढ़ापे के इन्तज़ामों, शादी आदि के खर्चे न्यूनतम मज़दूरी का 25 प्रतिशत (उपरोक्त के अतिरिक्त) होने चाहिए। न्यूनतम मज़दूरी तय करते समय केन्द्र और राज्य की सरकारों ने इन मानदण्डों का कभी पालन नहीं किया। अगर कोई सरकार वाकई मज़दूरों के हितों के बारे में सोचती तो उसे पूरे देश में न्यूनतम मज़दूरी कम से कम इन्हीं मानदण्डों पर तय करना तत्काल सुनिश्चित करना चाहिए और इसका अनुपालन सभी राज्यों द्वारा क़ानूनन बाध्यताकारी बनाना चाहिए। लेकिन मोदी सरकार इसका ठीक उल्टा करने जा रही है।

समान वेतन क़ानून को भी सरकार कमज़ोर बनाने जा रही है। प्रस्तावित विधेयक में वेतन के मामले में लिंगभेद के आधार पर भेदभाव को ख़त्म करने की बात है। सुनने में यह अच्छा लगता है लेकिन असलियत यह है कि पहले से मौजूद क़ानून इससे कहीं अधिक व्यापक सुरक्षा प्रदान करते हैं। मूल क़ानून न केवल मज़दूरी के मामले में बल्कि लिंग के आधार पर भरती के मामले में भेदभाव का भी निषेध करता है। इसमें महिलाओं के लिए काम के अवसर बढ़ाने के लिए सलाहकार समिति बनाने और शिकायतें सुनने के लिए लेबर आफिसर नियुक्त करने का भी प्रावधान है। नौ पेज के मूल क़ानून को हटाकर नये विधेयक में सिर्फ़ एक लाइन का प्रावधान किया गया है जिसमें ये सारी बातें नदारद हैं।

श्रम क़ानूनों के उल्लंघन पर निगरानी से छूट

'इंस्पेक्टर राज' के ख़ात्मे की माँग मालिकान की ओर से लम्बे समय से उठाई जा रही है, लेकिन पहली बार लेबर इंस्पेक्टर को ही ख़त्म करने का काम मोदी सरकार करने जा रही है। 'मज़दूरी पर श्रम संहिता' में लेबर इंस्पेक्टर की जगह पर 'फ़ैसिलिटेटर' यानी 'कार्य सुगम बनाने वाला' की नियुक्ति की बात कही गयी है। उनका काम होगा ''नियोक्ताओं और मज़दूरों को इस संहिता के प्रावधानों के अनुपालन के सबसे प्रभावी तरीकों के बारे में जानकारी प्रदान करना।'' मज़दूरी का भुगतान क़ानून के तहत क़ानून का पालन नहीं करने और जाँच में सहयोग नहीं करने पर मालिक पर जुर्माना लगाने का प्रावधान है। लेकिन 'मज़दूरी पर श्रम संहिता' में कहा गया है कि मालिक के ख़िलाफ़ क़ानूनी कार्रवाई करने से पहले फ़ैसिलिटेटर उसे लिखित निर्देश देकर क़ानून को लागू करने का एक मौक़ा देगा। अगर निर्धारित समय के भीतर मालिक ने उसे दुरुस्त कर लिया तो फिर कोई कार्रवाई नहीं की जायेगी।

किसी भी कारखाना इलाक़े में थोड़ा समय बिताने वाला हर व्यक्ति जानता है कि श्रम विभाग मज़दूरों की सुरक्षा के लिए क्या करता है। लेबर इंस्पेक्टर मालिकों की जेब में होते हैं और श्रम क़ानूनों का नंगई से उल्लंघन होता है। फिर भी इस बात की संभावना रहती है कि मज़दूर एकजुट हों तो ऐसे उल्लंघनों पर कार्रवाई के लिए श्रम विभाग पर दबाव डाल सकते हैं। अब मालिकान को इस संभावना से भी मुक्त कर दिया गया है। कुछ साल पहले की एक रिपोर्ट के अनुसार श्रम विभाग में मौजूद कर्मचारियों को देखते हुए हालत यह है कि अगर वे रोज़ एक कारखाने का निरीक्षण करें तो भी उस कारखाने के अगले निरीक्षण का मौका पाँच साल बाद ही आयेगा। ऐसे में श्रम विभाग को और मज़बूत करने के बजाय उसके अधिकारों में कटौती के पीछे की मंशा कोइ् भी समझ सकता है।

ट्रेड यूनियन अधिकारों में और कटौती

प्रस्तावित क़ानून में मज़दूरी का भुगतान क़ानून के इस प्रावधान को समाप्त कर दिया गया है जिसके तहत ट्रेड यूनियनें नियोक्ताओं के ऑडिट किये हुए खाते और बैलेंस शीट को देख सकती थीं। इससे वे वार्ताओं के दौरान मालिकों के ऐसे झूठे दावों को खारिज कर सकते थे कि कम्पनी की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होने के कारण मज़दूरों की माँगें नहीं मानी जा सकतीं। ट्रेड यूनियन बनाने के मज़दूरों के अधिकारों में अन्य कटौतियाँ पहले से जारी हैं।

मज़दूरों के लिए यूनियन बनाना और भी मुश्किल कर दिया गया है। मूल कानून के अनुसार किसी भी कारखाने या कम्पनी में 7 मज़दूर मिलकर अपनी यूनियन बना सकते थे। फिर इसे बढ़ाकर 15 प्रतिशत कर दिया गया। यानी किसी फ़ैक्टरी में काम करने वाले मज़दूरों का कोई ग्रुप अगर कुल मज़दूरों में से 15 प्रतिशत को अपने साथ ले ले तो वह यूनियन पंजीकृत करवा सकता है। मगर अब इसे बढ़ाकर 30 प्रतिशत किया जाना है। मतलब साफ़ है कि अगर फ़ैक्टरी मालिक ने अपनी फ़ैक्टरी में दो-तीन दलाल यूनियनें पाल रखी हैं तो एक नयी यूनियन बनाना बहुत कठिन होगा और फ़ैक्टरी जितनी बड़ी होगी, यूनियन बनाना उतना ही मुश्किल होगा। ठेका क़ानून भी अब 20 या इससे ज़्यादा मज़दूरों वाली फ़ैक्टरी पर लागू होने की जगह 50 या इससे ज़्यादा मज़दूरों वाली फ़ैक्टरी पर लागू होगा। यानी जिस फ़ैक्टरी में 50 से कम मज़दूर काम करते होंगे उस पर ठेका कानून लागू ही नहीं होगा। इसका अंजाम क्या होगा इसे आसानी से समझा जा सकता है।

कहने की ज़रूरत नहीं कि पूँजीपतियों की तमाम संस्थाएँ और भाड़े के बुर्जुआ अर्थशास्त्री उछल-उछलकर सरकार के इन प्रस्तावित बदलावों का स्वागत कर रहे हैं और कह रहे हैं कि अर्थव्यवस्था में जोश भरने और रोज़गार पैदा करने का यही रास्ता है। कहा जा रहा है कि आज़ादी के तुरन्त बाद बनाये गये श्रम क़ानून विकास के रास्ते में बाधा हैं इसलिए इन्हें कचरे की पेटी में फेंक देना चाहिए और श्रम बाज़ारों को ''मुक्त'' कर देना चाहिए। विश्व बैंक ने भी 2014 की एक रिपोर्ट में कह दिया था कि भारत में दुनिया के सबसे कठोर श्रम क़ानून हैं जिनके कारण यहाँ पर उद्योग व्यापार की तरक्क़ी नहीं हो पा रही है। पूँजीपतियों के नेता बड़ी उम्मीद से कह रहे हैं कि निजी उद्यम को बढ़ावा देने और सरकार का हस्तक्षेप कम से कम करने के हिमायती नरेन्द्र मोदी भारत में ''सुधारों'' को तेज़ी से आगे बढ़ायेंगे। इनका कहना है कि उन क़ानूनों में बदलाव लाना सबसे ज़रूरी है जिनके कारण मज़दूरों की छुट्टी करना कठिन होता है।

पूँजीपतियों की लगातार कम होती मुनाफ़े की दर और ऊपर से आर्थिक संकट तथा मज़दूर वर्ग में बढ़ रहे बग़ावती सुर से निपटने के लिए पूँजीपतियों के पास आखिरी हथियार फासीवाद होता है। भारत के पूँजीपति वर्ग ने भी नरेन्द्र मोदी को सत्ता में लाकर अपने इसी हथियार को आज़माया है। फासीवादी सत्ता में आते तो मोटे तौर पर मध्यवर्ग (तथा कुछ हद तक मज़दूर वर्ग भी) के वोट के बूते पर हैं, लेकिन सत्ता में आते ही वह अपने मालिक बड़े पूँजीपतियों की सेवा में सरेआम जुट जाते हैं। बात श्रम क़ानूनों को कमजोर करने तक ही नहीं रुकेगी, क्योंकि फासीवाद बड़ी पूँजी के रास्ते से हर तरह की रुकावट दूर करने पर आमादा होता है और यह सब वह ''राष्ट्रीय हितों'' के नाम पर करता है। फासीवादी राजनीति पूँजीपतियों के लिए काम करने और उनका मुनाफ़ा बढ़ाने को देश के लिए काम करना, देश को ''महान'' बनाने के लिए काम करना बनाकर पेश करती है। इसके लिए सभी को (ज़ाहिर है पूँजीपति इसमें शामिल नहीं होते) बिना कोई सवाल-जवाब किये, बिना कोई हक़-अधिकार माँगे काम करना पड़ेगा। लोग अपनी तबाही-बर्बादी के बारे में सोचें नहीं, इसके विरोध में एकजुट होकर लड़ें नहीं, इसी मकसद से तरह-तरह के भावनात्मक मुद्दे भड़काये जाते हैं और धार्मिक बँटवारे किये जाते हैं। देश के मेहनतकशों को अपने अधिकारों पर इस खुली डकैती के ख़िलाफ़ लड़ना है या आपस में एक-दूसरे का सिर फुटौवल करना है, यह फ़ैसला उन्हें अब करना ही होगा।

अपनी हरकतों के चौतरफा विरोध से बौखलाये संघी फासीवादी गिरोह की झूठ पर टिकी मुहिम

(पेज 16 से आगे)

रही है। जैसा कि अरुंधति राय ने अपना राष्ट्रीय पुरस्कार लौटाते हुए लिखा है - "भाजपा जो दिन में करती है, कांग्रेस वो रात में करती है"।

धर्मनिरपेक्ष-जनवादी शक्तियाँ हमेशा से सभी साम्प्रदायिकतावादियों से लड़ती रही हैं। इस्लामिक व खालिस्तानी साम्प्रदायिकतावादियों द्वारा हिन्दुओं का लहू बहाए जाने के खिलाफ़ धर्मनिरपेक्ष, जनवादी व वामपंथी ताकतें ही लोहा लेती रहीं न कि कायर हिन्दुत्ववादी टोला। भारत हो या पाकिस्तान य बंगलादेश या दुनिया का कोई भी अन्य देश मुस्लिम कट्टरपंथियों द्वारा बेगुनाह हिन्दुओं और अन्य गैर-मुस्लिमों पर कहर बरपाए जाने के खिलाफ धर्म निरपेक्ष व जनवादी ताकतें हमेशा आवाज़ उठाती रही हैं। संघी फासीवादी टोला तो अन्य धर्मो के कट्टरपंथियों द्वारा आम हिन्दु जनता का खून बहाए जाने पर अन्दर से खुश होता है क्यों कि इससे उसे हिन्दुओं को अल्पसंख्यकों के खिलाफ़ भड़काकर अपनी हिन्दुत्ववादी फासीवादी राजनीति आगे बढ़ाने का मौका मिलता है। अल्पसंख्यक धार्मिक सम्प्रदायिकता तो वास्तव में हिन्दुत्ववादी साम्प्रदायिकता की पूरक है, इसे फलने-फूलने के लिए खाद-पानी देती है। इसी तरह हिन्दुत्ववादी साम्प्रदायिकता भी अल्पसंख्यक साम्प्रदायिकता के लिए खाद-पानी का प्रबन्ध करती है। बाहरी तौर पर दुश्मन नज़र आने वाले ये साम्प्रदायिक टोले वास्तव में मित्र हैं।

इसलिए आज जो ताकतें देश में बने साम्प्रदायिक फासीवादी माहौल का विरोध कर रही हैं उनकी लड़ाई को "भाजपा बनाम कांग्रेस" या "हिन्दु बनाम मुस्लिम" जैसे चौखटों में रखना पूरी तरह नाज़ायज है जैसा कि हिन्दुत्ववादी संघी टोला कर रहा है।

भारत स्तर पर हिन्दुत्ववादी कट्टरपंथियों की ताकत अधिक होने के चलते साम्प्रदायिक नफ़रत का माहौल पैदा करने, जनता के जनवादी अधिकारों पर हमलों, अन्य धर्मो के लोगों के कत्लेआम, साहित्यकारों, कलाकारों, सामाजिक कार्याकर्ताओं की हत्याओं, विचारों की आज़ादी के हनन, देश के कोने-कोने में विभिन्न किस्म की साम्प्रदायिक घटनाओं को अंजाम देने, दलितों पर जातिवादी जुल्म ढाने, आदि में हिन्दुत्ववादी कट्टरपंथी सबसे आगे रहे हैं। इनके द्वारा अंजाम दी गई कुल साम्प्रदायिक काली करतूतें अन्य सभी की कुल साम्प्रदायिक काली करतूतों से कई गुना अधिक हैं। इसलिए स्वाभाविक तौर पर धर्म-निरपेक्ष व जनवादी लोगों को सबसे अधिक हिन्दुत्ववादी कट्टरपंथियों के खिलाफ़ लड़ना पड़ता है। सभी साम्प्रदायिकतावादियों में से हिन्दुत्ववादी कट्टरपंथी ही सबसे बड़ा खतरा रहे हैं इस लिए मुख्य लड़ाई भी हिन्दुत्ववादी कट्टरपंथियों के खिलाफ़ ही रही है, लेकिन सिर्फ इनके खिलाफ़ ही नहीं। हिन्दुत्ववादी कट्टरपंथियों द्वारा किया जाता यह प्रचार पूरी तरह झूठ है कि धर्म निरपेक्ष लोग सिर्फ अल्पसंख्यकों पर जुल्मों के खिलाफ ही बोलते हैं।

आज जिस पैमाने पर हिन्दुत्ववादी कट्टरपंथियों का विरोध किया जा रहा है इसका कारण कोई साजिश नहीं है जैसा कि मोदी भक्त प्रचारित कर रहे हैं बल्कि यह तो वक्त की ज़रूरत है। आज जो हालात बने हैं उन्हें देखते हुए इसका विरोध इससे भी कही अधिक तगड़ा होना चाहिए। पहले भी अलग-अलग समय पर विभिन्न मुद्दों पर इनाम वापिस होते रहे हैं और इनाम लेने से मना भी किया जाता रहा है। लेकिन इस इतने बड़े पैमाने पर इनाम वापसी के जरिए सामूहिक विरोध पहली बार देखने को मिला है।

सम्प्रदायिक फासीवाद के बढ़ते जा रहे विरोध को बढ़ते जा रहे साम्प्रदायिक फासीवादी हमले के सन्दर्भ में देखा जाना चाहिए। मौजूदा हालात पहले से गुणात्मक तौर पर भिन्न हैं। आज हिन्दुत्ववादी कट्टरपंथियों की ताकत बहुत अधिक बढ़ चुकी है। आज देश में इनके द्वारा बड़े स्तर पर अल्पसंख्यकों के खिलाफ़ नफ़रत का वातावरण बना दिया गया है। गौहत्या, धर्म परिवर्तन, लव जिहाद, हिन्दु धर्म की रक्षा आदि अनेकों बहानों तले अल्प संख्यकों खासकर मुस्लमानों व ईसाइयों को निशाना बनाया जा रहा है। हिन्दुत्ववादी कट्टरपंथियों द्वारा दलितों पर दमन बहुत बढ़ गया है। साम्प्रदायिक फासीवाद के खिलाफ़ आवाज़ उठाने वालों साहित्यकारों, सामाजिक कार्यकर्ताओं आदि को जान से मारने की धमकियाँ दी जा रही हैं, जानलेवा हमले हो रहे हैं, गुलाम अली जैसे गायकों को भारत में कार्यक्रम करने से रोका जा रहा है। हर दिन अनेकों साम्प्रदायिक कार्रवाइयाँ हिन्दुत्ववादी कट्टरपंथियों द्वारा अंजाम दी जा रही हैं।

लुटेरे पूँजीपति वर्ग की सेवा में हिटलर-मुसोलनी की तर्ज पर भारत में फासीवादी सत्ता कायम करने करके जनता के सारे जनवादी अधिकार छीनने का सपना देखने वाली आर.एस.एस. की सदस्यता पिछले पाँच सालों में बहुत तेज़ी से बढ़ी है। अगस्त 2015 की एक रिपोर्ट के मुताबिक पिछले पाँच सालों में इसकी देश के कोने-कोने में लगने वाली शाखाओं की संख्या में 61 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। देश में रोज़ाना इसकी 51335 शाखाएँ लगती हैं। आर.एस.एस. से सम्बन्धित करीब 40 संगठनों का आधार तेज़ी से बढ़ा है। इसका राजनीतिक विंग भारतीय जनता पार्टी मुस्लमानों के गुजरात-2002 नरसंहार के कमाण्डर नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में केन्द्र में भारी बहुमत से सरकार बनाने में कामयाब हुआ है। केन्द्र में मोदी सरकार बनने के बाद संघ परिवार (आर.एस.एस. व इससे सम्बन्धित संगठनों जैसे भाजपा, बजरंग दल, ए.बी.वी.पी., सेवा भारती आदि) के फैलाम में और भी तेज़ी आई है।

संघ परिवार की इस बढ़ी सामाजिक-राजनीतिक ताकत के मुताबिक इसके काले कारनामों में भी वृद्धि हुई है। पिछले पाँच वर्षो में संघ परिवार की ताकत में तेज़ वृद्धि के साथ ही साम्प्रदायिक हिंसा की घटनाओं में भी तेज़ वृद्धि हुई है। भारत सरकार के गृह मंत्राल्य के मुताबिक सन् 2011 से सन् 2014 के चार सालों के दौरान 2175 साम्प्रादायिक हिंसा की घटनाएँ हुई हैं। संघ परिवार द्वारा योजनाबद्ध ढंग से मुज़फ़्फ़रनगर में मुस्लमानों के कत्लेआम इसी दौरान सन् 2013 में अंजाम दिया गया है। इस कत्लेआम में 100 से अधिक लोग मारे गए थे और पचास हज़ार से अधिक विस्थापन का शिकार हुए थे। देश भर में साम्प्रदायिक नफ़रत फैला कर भाजपा द्वारा केन्द्र सरकार पर कबजे के अगले दो महीनों में ही साम्प्रदायिक हिन्सा की 600 घटनाएँ घटित हो गई थीं। हिन्दु धर्म की रक्षा, गौरक्षा, तथाकथित लव जेहाद का विरोध, धर्म परिवर्तन विरोध आदि बहानों तले पिछले डेढ वर्ष में साम्प्रदायिक हिन्सा का माहौल निरन्तर बढ़ता गया है। संघ परिवार ही नहीं बल्कि इसे अलग अनेकों हिन्दुत्ववादी कट्टरपंथी संगठन-ग्रुप साम्प्रदायिक नफ़रत फैला रहे हैं और हिंसा की घटनाओं को अंजाम दे रहे हैं। विभिन्न पार्टियों की सरकारें व पुलिस प्रशासन इनके खिलाफ़ कार्रवाई करने की बजाए इनका साथ देते हैं। भारत में धार्मिक अल्पसंख्यकों खासकर मुस्लमानों और ईसाइयों को बेहद भय के माहौल में दिन काटने पड़ रहे हैं। खान-पान, रहन-सहन, त्यौहारों, रीति-रिवाजों सम्बन्धी उनके मन में व्यापक पैमाने पर डर फैला है। दादरी (उत्तर प्रदेश), ऊधमपुर (जम्मू), सिरमौर (हिमाचल) आदि जगहों पर गौहत्या को बहाना बनाकर मुस्लमानों की हत्याओं की ताज़ा घटनाएँ आने वाले बेहद कठिन समय का संकेत देती हैं। ऐसी घटनाएँ लगातार सामने आ रही हैं। कुछ दिन पहले टीपू-सुल्तान ज्यंती के आयोजनों के अवसर पर कर्नाटका में संघी टोले द्वारा हिंसा भड़काई गई है।

साम्प्रदायिकता के खिलाफ़ बोलने वालों, जन-अधिकारों के लिए आवाज़ उठाने वालों सामाजिक कार्याकर्ताओं-साहित्यकारों को निशाना बनाया जा रहा है। प्रो. एम.एम. कलबुर्गी, का. पानसरे, डा. दाभोल्कर की हत्याएँ हो चुकी हैं। पत्रकार रविश कुमार व अन्य जनवाद पसंद व्यक्तियों को जान से मारने की धमकियाँ दी जा रही हैं।

इसलिए संघी टोले द्वारा किया जा रहा यह प्रचार कोरा झूठ है कि देश में सहनशीलता वाला माहौल है। यह भी कोरा झूठ है कि मोदी शासन काल में साम्प्रदायिकता में कमी आई है। हिटलर-मुसोलनी की भारतीय संताने "एक झूठ सौ बार बोलने पर सच बनाने" की नीति पर चल रही हैं। लेकिन सच को झूठ में न तो इनके पूर्वज बदल पाए थे और न ही ये बदल पाएँगे।

भाजपा की केन्द्र व अन्य राज्य सरकारें हिन्दुत्ववादी कट्टरपंथियों को हवा दे रही हैं। इसके विभिन्न केन्द्रीय मंत्रियों, मुख्य मंत्रियों, सांसदों, विधायकों व अन्य नेताओं द्वारा मुसलमानों के खिलाफ़ भड़काऊ बयान लगातार आ रहे हैं। नरेन्द्र मोदी साम्प्रदायिकता के विषय पर कम ही बोलते हैं। उनकी चुप्पी और कभी कभी दिए जाने वाले गोल-मोल ब्यानों से हिन्दुत्ववादी कट्टरपंथियों को स्पष्ट संदेश जाता है कि वे अपने काले कामों में जोर-शोर से लगे रहें, कि उनकी खिलाफ़ कार्रवाई करने का सरकार का कोई इरादा नहीं है। सन् 2002 में गुजरात में मुख्य मंत्री होने के दौरान मुस्लमानों के कत्लेआम की कमाण्ड सम्भालने वाले मोदी से और उम्मीद भी क्या की जा सकती है?

हरियाणा के मुख्य मंत्री मनोहर लाल खट्टर ने कुछ दिन पहले कहा कि मुसलमानों को अगर भारत में रहना है तो उन्हें गाय का माँस खाना बन्द करना होगा। साक्षी महाराज, योगी अदित्यनाथ, संगीत सोम, साधी प्राची, जैसे भाजपा के सांसद व विधायक लगातार मुसलमानों के खिलाफ़ ज़हरीले ब्यान दाग रहे हैं। भाजपा के उत्तर प्रदेश से सांसद योगी आदित्यनाथ ने दादरी काण्ड के बाद हिन्दुओं में हथियार बाँटने का ऐलान किया था। इन सबके खिलाफ़ सरकार, भाजपा या मोदी द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की जा रही है। इसलिए इनाम वापिस करने वालों का सरकार के खिलाफ़ गुस्सा पूरी तरह जायज है।

हिन्दुत्वादी सोच से ग्रस्त, रामायण व महाभारत की गैर इतिहासिक यानि मिथिहासिक व्याख्याएँ करने के सहारे "इतिहासकार बने" प्रो. वाई. सुदर्शन राव को भारतीय खोज परिषद का अध्यक्ष बना दिया गया है। फिल्म एण्ड टेलीवीज़न इंस्टिचियूट आफ़ इण्डिया, सेंसर बोर्ड, नेशनल बुक ट्रस्ट, ललित कला अकादमी, जैसी संस्थाओं के प्रमुख पदों पर हिन्दुत्ववादी व्यक्तियों को बिठाया जा रहा है। शिक्षा का भगवाकरण तेज़ कर दिया गया है। एन.सी.ई.आर.टी. की इतिहास की किताबों के हिन्दुत्ववादी फासीवादी विचारधारा के मुताबिक दुबारा लिखने का की तैयारी है। इसके साथ ही अफसरशाही व अदाललती व्यवस्था में कट्टर भगवी सोच वाले व्यक्तियों का भरमार करने की प्रक्रिया जारी है।

समझना मुश्किल नहीं है कि पूँजीवादी जनतंत्र की जगह पूँजीवादी फासीवादी सत्ता स्थापित करने की तैयारियाँ पूरे ज़ोरों पर हैं। साढ़े तीन वर्ष में संघ परिवार देश का क्या हाल करेगा इसका अन्दाज़ा आसानी से लगाया जा सकता है। इसलिए इनाम वापिस करने वालों सहित देश के जनवाद पसंद लोगों द्वारा मोदी सरकार की काली करतूतों का विरोध किया जाना न सिर्फ पूरी तरह जायज है बल्कि यह विरोध हर हाल में किया ही जाना चाहिए। चुप बैठने के अर्थ है फासीवाद का साथ देना।

इन दिनों इनाम वापिस करने वाले साहित्यकारों-कलाकारों के खिलाफ़ किया जा रहा एक कुतर्क यह है कि साहित्य अकादमी जैसे पुरस्कार सरकार ने नहीं दिए बल्कि "स्वायत्त" संस्थाओं द्वारा दिए गए हैं। इस लिए वापिस नहीं किए जाने चाहिए। लेकिन वास्तव में साहित्य अकादमी जैसी संस्थाओं की "स्वायत्तता" नकली है। साहित्य अकादमी इनाम प्राप्त लेखक प्रो. एम.एम. कलबुर्गी की हिन्दुत्ववादी कट्टरपंथियों द्वारा हत्या के बाद साहित्य अकादमी ने इसके विरोध में कोई ब्यान तक ज़ारी नहीं किया। दिल्ली में शोक सभा तक नहीं की गई। सतम्बर में विभिन्न साहित्यक-सांस्कृतिक संगठनों के प्रतिनिधी साहित्य अकादमी के अध्यक्ष को मिले थे और शोक सभा बुलाने की अपील की थी। साहित्यकारों द्वारा बार बार अपील करने पर भी ऐसा नहीं किया गया। साहित्य अकादमी के इस रवैये को किस रूप में लिया जाए? विचारों की आज़ादी पर हमलों व साहित्यकारों के मारे जाने के खिलाफ़ केन्द्र सरकार की इच्छा के खिलाफ़ साहित्य अकादमी अगर एक ब्यान तक ज़ारी नहीं कर सकती तो वह खुदमुख्तियार कैसे मानी जाए।

यह सारा माहौल हिन्दुत्ववादी व अन्य साम्प्रदायिक ताकतों को लिए तो अच्छा व फायदेमन्द हो सकता है लेकिन लोगों के लिए यह किसी भी प्रकार से ऐसा नहीं है। इसलिए देश में फैले साम्प्रदायिक माहौल के खिलाफ़ व फासीवादी मोदी सरकार द्वारा हिन्दुत्ववादी साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देने के खिलाफ़, व्यवस्था के निरन्तर फासीवादीकरण के खिलाफ़ जनवादी-धर्मनिरपेक्ष लोगों का गुस्सा व संघर्ष पूरी तरह जायज है। इनाम वापिस करने वाले साहित्यकारों, इतिहासकारों, फिल्मकारों, विज्ञानिकों द्वारा रोष व्यक्त करना कोई साजिश न होकर समय की जरूरत है। यह कोई देश द्रोह नहीं बल्कि भारत की जनता के पक्ष में उठाया गया जरूरी कदम है जिसकी ज़ोरदार हिमायत की जानी चाहिए।

--- रणबीर

चीन में आर्थिक संकट और मज़दूर वर्ग

चीन की आर्थिक व्यवस्था डावांडोल है। विश्व आर्थिक व्यवस्था में पुएर्तो रिको, ब्राज़ील, रूस, यूनान, स्पेन व अन्य देश अभी भी मंदी से उभर नहीं पाए हैं, वहीं चीन वैश्विक व्यवस्था को एक और बड़े संकट की तरफ खींच कर ले जा रहा है जो दुनिया भर के पूँजीपतियों के लिए चिंता का सबब है। पूँजीवादी व्यवस्था के विश्लेषक आने वाले नए संकट की चेतावनी दे रहे हैं और चीन के नकली कम्युनिस्टों को संकट से बचने के रास्ते सुझा रहे हैं। पर पूँजीवादी चीन और वैश्विक पूँजीवादी व्यवस्था को मंदी की इस जन्मजात व अंतकारी बीमारी से इस व्यवस्था के ख़त्म हुए बिना निजात नहीं मिलने वाला है। मजदूर वर्ग द्वारा भस्म किये जाने तक यह बदस्तूर इस तरह ही मृत्यु शय्या पर पड़ी सड़ती रहेगी।

हमें इस पूँजीवादी व्यवस्था की सड़ांध यानी आर्थिक संकट के संकेत, इसके कारण, उसका फैलाव के बारे में निश्चित रूप से जानना चाहिए क्योंकि संकट और उसके बाद मंदी में जहां एक तरफ पूरा बाज़ार धड़ाम कर गिर जाता है तो दूसरी तरफ यह मज़दूरों के हिस्से में भयंकर बर्बादी लाती है। हर सेक्टर में छंटनी, तालाबंदी, कमरतोड़ महंगाई, बेरोजारी और भूखमरी के कारण मज़दूर वर्ग और जनता के व्यापक हिस्से को यह गर्त में धकेल देती है। जनता के पास पैसा नहीं होता है कि बाज़ार से कोई ज़रूरत के सामान खरीद सकें। बाज़ार माल से पटे रहते हैं और भूखे और नंगे लोग दुकानों के बाहर सड़कों पर सोते हैं।

जब से पूँजीवादी व्यवस्था अस्तित्व में आई है आर्थिक संकट के कारण छायी मंदी और मज़दूर वर्ग की बर्बादी हर हमेशा से चक्र में आते रहे हैं। पूँजीवाद के विकास का नियम ही तेजी-संकट-मंदी के रास्ते होता है। आर्थिक मंदी से उबरने के लिए ही पूँजीवादी देश अन्य देशों पर युद्ध थोपते हैं। पिछले 15 सालों में ही 1999 का एशियाई बाघ संकट, 2001 का डॉट कॉम संकट और फिर 2008 का सबप्राइम संकट, यूरोप के संप्रभु संकट के कुचक्र से यह व्यवस्था मर मर के चल रही है। और अब चीन नए आर्थिक संकट के मुँह में पहुँच रहा है। आर्थिक संकट की शुरुआत अक्सर उत्पादन या सट्टेबाजी के तेजी के दौर के बाद होती है क्योंकि तेजी के दौर में पूँजी की तरलता के कारण निवेशकों को निवेश करने के लिए आसानी से पूँजी मिल जाती है। पूँजी को तमाम बैंक और सटोरिये ऋण के जरिये जनता तक पहुंचाते हैं और दूसरी तरफ डिबेंचर के जरिये जनता का एक हिस्सा कंपनियों के शेयर भी खरीदता है। सटोरिये जमकर शेअरों पर, घरों, डॉट कॉम कंपनियों में पूँजी लगाते हैं और नए शेयर/घर/ऋण खरीदने व बेचने की प्रक्रिया में कीमतें वास्तविक कीमत से कई गुना बढ़ जाती है। सब कुछ ठीक चल रहा होता है कि अचानक जब इस प्रक्रिया के सिरे में ऋण को लौटाने की बारी आती है तब यह बुलबुला फूटता है और शेयरों की कीमतें धड़ाम से गिर जाती हैं। चीन में आर्थिक संकट का डर पहली बार तब पैदा हुआ जब एसेट (रियल एस्टेट - घर तथा मॉल आदि) बुलबुला फूटने वाला था, तब चीन की सरकार ने जमकर सरकारी मदद दी और इसे संभाल लिया परन्तु इसकी सतह के नीचे से एक नया बुलबुला-इक्विटी बुलबुला पैदा हुआ और यह संभाले नहीं संभाला। आखिरकार यह बुलबुला फूट ही गया और चीन के दोनों स्टोक एक्सचेंज शंघाई और शेनजेन में भारी गिरावट दर्ज हुयी जिसमें खरबों युआन स्वाह हो गये और लाखों लोग दिवालिया हो गये। इस बुल्बुले के फूटने के बाद ही संकट का श्री गणेश हो चूका है और अब चीन की सरकार तमाम कदम उठाकर इसे टालना चाहती है परन्तु फिलहाल यह लग रहा है कि चीन विश्व पूँजीवादी व्यवस्था को नए संकट में धकेलने वाली है। इसकी भयंकरता से बचने के लिए चीन की सरकार ने अपनी मुद्रा के इतिहास में सबसे बड़ा अवमूल्यन किया परन्तु यह भी इसे टाल नहीं सका। इसका भयावह असर चीन के मज़दूरों पर ही होगा। चीन में सरकार के मज़दूर विरोधी चरित्र व पूँजीपतियों की खुली लूट के खिलाफ जो संकट के बाद और नगी हो जाएगी ज़बर्दस्त रोष आंदोलनों का रूप ले रहा है और चीनी मजदूर सड़कों पर उतर रहे हैं। निश्चित ही चीन के मज़दूरों को इस व्यवस्था को उखाड़ फेंकने में समय लगेगा परन्तु ये शुरूआती कदम ही पूँजीपतियों की और विदेशी निवेशकों की नींद उड़ा रहे हैं। इन तमाम अलग अलग दिख रहे घटनाओं के मूल में जो कारण है वह चीन की पूँजीवादी व्यवस्था है। इस संकट ने जिन अंतर्विरोधों को सतह पर ला दिया है उन्हें समझने के लिए हमें चीन की आर्थिक व्यवस्था का थोड़ा गहनता से अध्ययन करना होगा।

आर्थिक संकट की पूर्वपीठिका

आज दुनिया भर के बाज़ार एक दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हैं। और गहराई में जायें तो साम्राज्यवाद के अंतिम दौर भूमंडलीकरण में पूँजी और श्रम भूमंडलीकृत असेंबली लाइन में जुड़ गये हैं। इस ग्लोबल असेंबली लाइन में अगर एक देश आर्थिक संकट का शिकार हो तो यह पूरी असेंबली लाइन की समस्या होती है। इसलिए 2008 के संकट के कारण दुनिया के हर देश में तबाही मची थी। 2008 के संकट से विश्व अर्थव्यवस्था जिस मंदी में पहुंची थी उससे अभी तक उबर नहीं पायी है पर उससे उबरने के लिए जितने भी जतन किये गये वे आज नए संकटों जन्म दे रहे हैं। चीन के मौजूदा संकट की कहानी भी 2008 के अमरीकी सबप्राइम संकट के साथ शुरू होती है। इस संकट के कारण चीन पर मंडरा रहे मंदी के खतरे को दूर करने के प्रयास से ही यह संकट पैदा हुआ है। यह एक ऐसा कुचक्र है जिसमें से पूँजीवादी देशों का निकलना असंभव है।

हर संकट से निजात पाने के लिए उठाये गये कदम नए संकटों को जन्म देते हैं। 2008 में चीन की सत्तारूढ़ कम्युनिस्ट पार्टी, जो सिर्फ नाम की कम्युनिस्ट है और स्वरूप में सामाजिक फासीवादी बन चुकी है, ने चीन को संकट की गिरफ्त में आने से बचाने के लिए 4 लाख करोड़ डॉलर का भारी स्टिम्युलस पैकेज दिया जिससे कि पूँजी की तरलता बरकरार रहे और चीनी सरकार ने खुद कई नये निर्माण प्रोजेक्ट हाथ में लेकर आर्थिक स्थिरता लाने का प्रयास किया। परन्तु हर ऐसे प्रयास अर्थव्यवस्था में बुलबुला पैदा करते हैं यानी कि किसी माल विशेष (शेयर/रियल एस्टेट/कलाकृतियाँ) की कीमतें सट्टेबाजी के कारण असल कीमत से बढ़ने लगती हैं और यह बढ़ोतरी यानी बुलबुले का फूलना तब तक जारी रहता है जब तक की यह बुलबुला फूट न जाए और एक नया संकट पैदा हो जाए। इस संकट से निपटने के लिए सरकार फिर से नए बेल आउट पैकेज और स्टिम्युलस पैकेज देती है यानी खरबों रुपए सीधे बैंकों और कंपनियों को मदद के रूप में दिये जाते हैं और सीधे पूँजी को उत्पादक अतिविधियों में लगाया जाता है।

2008 में आये संकट के बाद दिए स्टिम्युलस पैकेज से चीन में जो पैसा लगा उससे बड़े-बड़े निर्माण के प्रोजेक्ट हाथ में लिए गये जिसने कई बेरोजगारों को फिर से काम पर ला दिया। परन्तु यह निर्माण सिर्फ उत्पादन के लिए होता है। बुलेट ट्रेन बनाने, गगनचुम्बी इमारतें खड़ी करने, सड़क खोदकर फिर से बनाने के काम महज पूँजी संचालित करने और निवेशकों को भरोसा दिलाने के लिए किया गया कि चीन का बाज़ार समाजवाद विश्व अर्थव्यवस्था के संकट में जाने के कारण नहीं डूबने वाला है। इस परिघटना ने चीन में कई भूतिया शहरों को जन्म दिया है जिसमें कोई नहीं रहता है। दुनिया का सबसे बड़ा मॉल न्यू साउथ चाइना माल बनने के बाद से ही खाली पड़ा है। मंगोलिया में ओर्डोस शहर पूरी तरह से खाली है। इस आर्थिक धक्के के कारण व्यवस्था में जो पूँजी की तरलता आई उससे तमाम निवेशकों और सट्टेबाजों ने एक नया बुलबुला पैदा किया जो कि रियल इस्टेट का बुलबुला था।

चीन के भूतपूर्व मार्क्सवादियों ने अमरीका सरीखे संकट से बचने की काफी कोशिश की थी परन्तु पूँजीवादी व्यवस्था का नियम ही अराजकता है। बाजार समाजवाद के संस्थापक और सर्वहारा के गद्दार देंग शियाओ पेंग ने शंघाई और शेनजेन स्टॉक मार्केट स्थापित किये और कहा कि सट्टेबाज पूँजी तब "सापेक्षिक बेहतर समाज" बनाएगी। चीन के मौजूदा प्रधान ज़ाई ने "चीनी सपना" दिखाया पर अंततः इतिहास ने इस बाज़ार समाजवाद को "निरपेक्ष खराब समाज" के "चीनी दुःस्वप्न" में तब्दील कर दिया। 2008 की मंदी की गिरफ्त में आने से बचने के लिए चीन की सरकार ने ब्याज दर (चीन के सेन्ट्रल बैंक द्वारा दूसरे बैंकों को दिये गये ऋण पर ब्याज) कम की जिसके कारण सट्टेबाजों और बैंकों को पूँजी आसानी से मिल सकती थी। चीनी अमीरज़ादों ने भी अमरीकी सट्टेबाजी का पागलपन को पीछे छोड़ते हुए सट्टेबाजी के नए कीर्तिमान स्थापित किये। चीन के सट्टेबाजों ने सब्जी की तरह मकान ख़रीदे। ये मकान बस बढ़ते दामों के कारण खरीद जा रहे थे जिससे कि कम दाम पर खरीदकर बढे दाम पर बेच दिया जाए। चीन के अखबार में छपी खबर के अनुसार एक गृहणी ने इंटरनेट से महज आधे घंटे में 10 मकान खरीद लिए और एक छात्र ने कुल मिलाकर 680 मकान खरीदे और बेचे। इन मकानों को भी लोगों के रहने के लिए नहीं बल्कि सिर्फ सट्टे के कारण बनाया और खरीदा बेचा जा रहा था।

बुलबुला फूलता जा रहा था। इसे सच्चाई की सतह से टकराना ही था और 2011 में जब इस बुलबुले के फूटने के संकेत मिलने लगे तो चीनी सरकार ने सट्टाबाज़ारी को रोकने के लिए सख्त नियमों को लागू किया। मकानों की कीमतें औंधें मुंह गिरने लगी तो सरकार ने मकानों पर दिए जाने वाले बचत पर रोक लगा दी और ब्याज दर को बढ़ा दिया ताकि यह प्रक्रिया तुरंत रोकी जा सके। चीन की व्यवस्था संकट से बच गयी परन्तु पहले से मंद गति पर विकसित होने लगी। परन्तु जो पूँजी सरकार ने तरलता के लिए बाज़ार में झोंकी थी वह देर सवेर नए संकट को जन्म देने का काम करती ही है। जब सरकार को लगने लगा कि मकानों की कीमतें नियंत्रित होने लगी हैं तब फिर से ब्याज दर को घटाया गया ताकि बाज़ार में खो रहा भरोसा जीता जा सके। रियल स्टेट बुलबुले के गर्भ से ही एक नया बुलबुला जन्म ले रहा था। मकानों की जगह अब स्टॉक एक्सचेंज के शेयरों ने ले ली थी। 2014 तक दोनों स्टॉक मार्केट ज़बरदस्त सट्टेबाजी का केंद्र बन चुके थे जिसमें बड़े निवेशकों से लेकर आम मजदूर, किसान, गृहणी तक खिंचे चले आये थे। इस तरह इक्विटी बुलबुला फूलना शुरू होता है।

चीन के सरकारी अखबार पीपल डेली ने स्टॉक मार्केट में निवेश को जोखिम मुक्त निवेश बताया और ज़ाई के "चीनी सपने" को हवा देनी शुरू की। सट्टेबाजी के कारण सटोरियों ने जमकर मुनाफा कमाया और शंघाई का सूचकांक 4000 के पार पहुंच गया। पीपल डेली ने कहा कि "बुलबुला क्या होता है? ट्यूलिप और बिटकॉइन बुलबुले होते हैं" (ट्यूलिप बुलबुला पहला बड़ा बुलबुला था जहाँ ट्यूलिप फूलों के बाज़ार में सट्टेबाजी के कारण कीमतें बढ़ी थीं और बुलबुला फूटने पर भारी नुक्सान हुआ था। बिटकॉइन एक डिजिटल मुद्रा है जिसे कोई केंद्रीय बैंक नहीं संचालित करता है जो कि हाल ही में एक बुलबुला देख चुकी है।) परन्तु जल्द ही चीनी सपना टूटने लगा और सरकार ने बड़ा संकट आता देख ही पहले ही कदम उठाते हुए युआन का अवमूल्यन कर दिया परन्तु स्टोक मार्केट की तबाही नहीं रुक सकती थी और तबाही आई भी। शंघाई स्टोक एक्सचेंज 5166 से 3700 पर जा लुड़का और 3 लाख करोड़ डॉलर स्वाहा हो गये। लाखों लोग तबाह हो गये। इक्विटी बुलबुला फुट चूका था और चीन के केंद्रीय बैंक को भी इसे स्वीकार करना पड़ा। बाज़ार समाजवाद उर्फ़ पूँजीवाद ने अपनी अंतकारी बीमारी का जानलेवा दौरा सहा और तुरंत ही बैलआउट के इंजेक्शन के साथ चीन की सरकार बाज़ार समाजवाद के लिए आ पहुंची। नया बेल आउट पैकेज दिया गया, ब्याज दर को फिर से घटा दिया गया, स्टोक मार्केट में कम्पनी मालिकों और शेयर होल्डरों द्वारा शेयर खरीदे व बेचने पर मनाही लग गयी। सरकार ने अखबार में जनता और निवेशकों को भरोसा दिलाने की कोशिश की और कहा कि "तूफानों के बाद इन्द्रधनुष नज़र आएगा"। परन्तु अभी बीजिंग पर धुएं और ओस से बनी धुंध छाई है जिसे मौजूदा चीनी अर्थव्यवस्था नहीं हटा सकती है। कोई इन्द्रधनुष नहीं दिखने वाला है। अभी तो और तबाही मचनी बाकी है क्योंकि क्योंकि विश्लेषकों के अनुसार शंघाई स्टोक एक्सचेंज और नीचे गिरेगा तभी जाकर शेयर अपनी असल कीमत पर आएंगे। सरकार हर कोशिश करके आर्थिक संकट से बचाना चाहती है लेकिन फिलहाल चीन की परिस्थिति को देखते हुए कई बुर्जुआ अर्थशास्त्री भी चीन के जरिये वैश्विक अर्थ व्यवस्था के संकट की आशंका जता रहे हैं।

चीनी मज़दूर और संकट

चीन में बाज़ार समाजवाद का जुमला नंगा हो चूका है। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी एक सामाजिक फासीवादी पार्टी है। माओ की मृत्यु के बाद दंग शिआओ पेंग ने ही कम्युनिस्ट पार्टी पर बुर्जुआ वर्ग का नियंत्रण पक्का किया। चीन ने 1976 में पूँजीवाद में संक्रमण किया था और आज पूर्ण रूप से वित्तीय पूँजी के विकराल भूमंडलीय तंत्र का एक अभिन्न हिस्सा है। अमरीका की सबसे बड़ी आई.टी. कंपनियों को सस्ती श्रम और ज़मीन देकर चीन की अर्थव्यवस्था विस्तारित हुयी है। इस मुकाम तक पहुँचने में बाजार समाजवाद कई दौर से होकर गुजरा। सबसे पहले कम्यून और क्रांतिकारी कमिटियों को भांग करने के बाद 1990 के दशक में बड़े स्तर पर राज्य द्वारा संचालित कंपनियों का निजीकरण शुरू हुआ और 21वीं शताब्दी में प्रवेश के दौरान कई विदेशी कंपनियों ने भी चीन में प्रवेश किया। चीनी राज्य ने मज़दूरों को मिलने वाली स्वास्थय, शिक्षा सुविधा से भी अपने कदम खींच लिए। पूँजीवाद की अंतकारी बिमारी के दौरे से अब तक बची हुयी चीन की व्यवस्था अब संकट की हरकारा बन गयी है।

चीन के सामाजिक फासीवादी देश के पूँजीपतियों के लिए जहाँ संकट से बचने के लिए बेल आउट पैकेज दे रहा है वहीं मज़दूरों को तबाह कर उनसे उनके तमाम अधिकार भी छीन रहा है। चीन में अमीर-गरीब पिछले 10 सालों में बेहद अधिक बढ़ी है। पार्टी के खरबपति "कॉमरेड" और उनकी ऐयाश संतानों का गिरोह व निजी पूँजीपती चीन की

(पेज 12 पर जारी)

दक्षिण चीन सागर की घटनाएँ और साम्राज्यवादी ताक़तों के बीच बढ़ता तनाव

पिछली अक्टूबर के आखिरी हफ्ते, एक अमरीकी समुद्री युद्ध पोत यू.एस. एस लासेन दक्षिण चीन समुद्र में चीनी क्षेत्र के भीतर दाखल हुआ | इस पोत के साथ एक जासूसी विमान भी था | इस दखलंदाज़ी के बाद चीनी सरकार की ओर से आधिकारिक तौर पर अमेरिका की इन भड़काऊ कार्रवाइयों के लिए भर्त्सना की गयी और चीन की ओर से ऐसी कार्रवाइयों का आगे से जवाब देने की पूरी तैयारी होने का दावा भी किया गया | वहीं, अमेरिका के रक्षा सचिव ऐश्टन कार्टर ने भी एक भड़काऊ ब्यान जारी करते हुए कहा कि अमेरिका ऐसे अंतर्राष्ट्रीय जल क्षेत्रों में किसी भी रूप में अपने पोत भेजने के लिए आज़ाद है और आने वाले महीनों के अंदर ऐसी और कार्रवाइयां की जायेंगी | दोनों ताकतों के दरमियान की यह तल्खी विभिन्न मंचों पर देखी जा रही है | कार्टर की ओर से इस घटना के बाद पूरे दक्षिण पूर्वी एशिया का दौरा करके यह माँग बार-बार उठाई गयी कि चीन को इन विवादित टापुओं से अपना दावा छोड़ देना चाहिए | साम्राज्यवादी राजनीतिक गलियारों में आजकल यह खबर ही सबसे अधिक चर्चा में है और इस बारे में कयास लगे जा रहे हैं कि यह मुद्दा इन दोनों ताकतों के दरमियान क्या रुख अख्तियार करेगा |

आज पूँजीवादी ढाँचा संकटों के ऐसे दौर में फंसा हुआ है कि इस संकट से निजात पाने के लिए इसे लगातार युद्धों का सहारा लेना पड़ रहा है | मतलब कि यह अपनी खुद कि होंद बचाने के लिए पूरी मानवता की सुरक्षा को दाँव पर लगा रहा है | दक्षिण चीन सागर की घटनाएँ भी उसी अंतर-साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा का ही नतीजा है जिसका अंजाम आज सीरिया भुगत रहा है | यूक्रेन और सीरिया में अमेरिकी-रूसी होड़ के बाद की यह सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है |

क्या है इन विवादित टापुओं का मुद्दा ?

दक्षिण चीन सागर में, हिन्द-चीन और फिलीपींस के दरमियान करीब 700 छोटे टापू हैं, जिनको सामूहिक तौर पर स्प्राटले टापुओं का समूह भी कहा जाता है | यह टापू कुदरती संसाधनों के लिहाज़ से काफी ज़रखेज़ हैं | इस समय इन टापुओं के ऊपर चीन, ब्रूनेई, वियतनाम, ताइवान, मलेशिया और फिलीपींस अपना-अपना दावा जता रहे हैं और इन टापुओं को लेकर इन मुल्कों के दरमियान यह झगड़ा कई दशकों से चलता आ रहा है | अगर इन दावेदारियों के कानूनी पक्ष को छोड़ दिया जाये तो यह बात साफ़ है कि इन मुल्कों के दरमियान इस झगडे ने कभी इतना तीव्र रूप नहीं लिया था, मतलब कि अभी तक यह मुल्क स्थानीय स्तर पर वार्ताओं के ज़रिए इस मसले पर जूझते आये थे |

तो अब यह सवाल लाज़िमी है कि अब अचानक पिछले कुछ महीनों से अमेरिका की इन टापुओं में दिलचस्पी इतनी क्यों बढ़ गयी है, जो वह एक स्थानीय मुद्दे को उभारकर उसको विश्व महत्ता का बनाकर पेश कर रहा है, हालांकि पड़ोसी मुल्कों के दरमियान इस तरह के सीमा विवाद एक आम बात है |

इस सवाल का जवाब उन्हीं अंतर-साम्राज्यवादी अन्तरविरोधों के तीखे होने में है, जिनकी बदौलत आज सीरिया में अमेरिका और रूस आमने-सामने हैं | अगर हम विश्व राजनीतिक घटनाक्रम पर नज़र डालें तो देखते हैं कि पिछले 10-12 सालों में अमेरिकी धौंस को चुनौती देने के लिए दो नयी ताकतें - रूस और चीन - उभरे हैं | सोवियत यूनियन के 1991 में बिखरने के बाद से जल्दी ही अमेरिका का विजयी रथ धीमा पड़ गया था जब रूस अपनी कुदरती संसाधनों पर आधारित अर्थव्यवस्था के आधार पर एक नयी आर्थिक शक्ति के रूप में उभरा | उसी ही समय, सन 2000 में चीन ने अपनी 'विश्विकृत हो' ('गो ग्लोबल') नीति की शुरुआत की थी | इस नीति का मुख्य मकसद था - चीनी निवेशकों को चीन के बाहर निवेश करने के लिए प्रोत्साहित करना | चूंकि 1976 में माओ की मौत के बाद से जब सरकारी क्षेत्र को तोड़ा जाने लगा, तब से यहाँ भी नौकरशाही की ऊपरी परत इस क्षेत्र पर काबिज़ होकर धीरे धीरे अमीर होने लगी थी | दूसरा, निजीकरण की नीतियों के चलते पूँजी का कुछ हाथों में निरंतर केंद्रित होना भी बढ़ रहा था | इक्कीसवीं सदी तक आते-आते चीन के पूँजीपतियों के पास इतनी पूँजी इकठ्ठी हो चुकी थी कि वह अब इसे चीन से बाहर भी निवेश करें | यह चीनी पूँजीवाद की जरूरत थी कि चीनी बाज़ार के ऊपर कब्ज़े के बाद वह अब पूरे विश्व के दुसरे बाज़ारों में भी अपना फैलाव करे | इसी का नतीजा थी 'विश्विकृत हो' नीति |

तब से लेकर आज तक चीनी पूँजीवाद ने विश्व के अन्य क्षेत्रों में अपना निवेश लगातार बढ़ाया है | अगर हम आंकड़ों में बात करें तो यह पूरा घटनाक्रम और भी साफ़ हो जता है | वर्ष 2002 में चीन का बाहरी सीधा विदेशी निवेश केवल 2.5 अरब डॉलर था, जबकि वर्ष 2013 में यह बढ़कर 101 अरब डॉलर पर जा पहुँचा | अमेरिका और जापान के बाद अब दुनिया में निवेश करने के मामले में चीन तीसरे नंबर पर है और यदि इसकी यही रफ़्तार जारी रहती है तो यह जल्द ही जापान को (135 अरब डॉलर) पीछे छोड़ दूसरे नंबर पर आ जायेगा (उपरोक्त आंकड़े अंकटाड (UNCTAD) की 'वैश्विक निवेश रिपोर्ट' के हैं)| इस विदेशी निवेश का बड़ा हिस्सा (तकरीबन 50%) चीन ने एशिया में ही निवेश किया है | उसके बाद यूरोप (19%), अमेरिका (13%) और फिर लातिनी अमेरिका और अफ्रीका का नंबर आता है | पिछले कुछ समय में चीन ने लातिनी अमेरिका और अफ्रीका के कई देशों के साथ बड़े-बड़े समझौते किये हैं, जिससे इन क्षेत्रों में चीन एक नयी आर्थिक ताकत के तौर पर उभरा है | लातिनी अमेरिका में चीन अमेरिका के बाद यहाँ का दूसरा सबसे बड़ा व्यापारिक भागीदार है जबकि अफ्रीका में इसका पहला नंबर है | चीन की बढ़ती आर्थिक ताकत का अंदाजा इसके अफ्रीका में निवेशों से लगाया जा सकता है | सन 2000 में अफ्रीका और चीन के दरमियान कुल व्यापर महज़ 10.5 अरब डॉलर का था जो केवल 15 साल में ही बीस गुना बढ़कर 200 अरब डॉलर से भी ज्यादा हो चुका है | इस तरह अब हम देख सकते हैं कि चीन अब पूरे विश्व की असेंबली लाइन में ही एक महत्त्वपूर्ण कड़ी नहीं, बल्कि विश्व भर में एक बड़ा निवेशक भी है और इसी वजह से यह पूरे विश्व के अलग-अलग पूँजीवादी सरदारों (खासकर अमेरिका) की मौजूदा हैसियत को प्रभावित कर रहा है |

अमेरिका के खिलाफ चीन को रूस में एक स्वभाविक सहयोगी भी मिल गया है | यह दोनों मुल्क अब यह कोशिश कर रहे हैं कि विश्व में अमेरिका की आर्थिक ताकत के प्रभाव का कोई विकल्प पेश किया जाये | इसीलिए यह अपना खुद का कारोबार भी अमेरिकी डॉलर को छोड़ खुद की मुद्राओं में करने लगे हैं | इनकी अगुवाई में ब्रिक्स का बनना भी अमेरिकी अगुवाई वाले जी-7 जैसे गुटों को एक चुनौती ही थी | वहीं, एशिया में अपनी स्थिति को और मजबूत करने के लिए चीन ने 2014 में 'एशिया अवसंरचनात्मक निवेश बैंक' की स्थापना की | चीन के बढ़ते इन क़दमों से अमेरिका के कान खड़े होना स्वाभाविक ही था | वहीं, यह भी परेशानी का एक सबब था कि यूरोप में अमेरिका के अब तक सहयोगी रहे ब्रिटेन, फ्रांस और जर्मनी जैसे देश भी, इस आर्थिक संकट के चलते चीन के प्रति नरमी दिखाने लगे थे और उन्होंने भी इस बैंक की सदस्यता लेने का ऐलान कर दिया | संकट में बुरी तरह फंसे इन देशों की कंपनियों के लिए चीन एक बड़ी मंडी है और चीन खुद भी यूरोप में एक बड़ा निवेशक है | सो यह स्वाभाविक ही था कि यह देश चीन के प्रति नरमी दिखाते | चीन के राष्ट्रपति ज़ाई जिनपिंग के पिछले महीने इंग्लैण्ड दौरे के दौरान उनका जमकर स्वागत हुआ और इंग्लैण्ड और चीन के दरमियान बड़े समझौतों पर दस्तखत हुए| उसके तुरंत बाद जर्मनी और फ्रांस के राजनेताओं ने भी अपने-अपने देश के पूँजीपतियों के बड़े काफिलों सहत चीन का दौरा किया और चीन-यूरोप के बढ़ते संबंधों को और पक्का किया |

इस सबसे तिलमिलाए अमेरिका ने भी चीन को घेरने के लिए नयी रणनीति तैयार की | आर्थिक क्षेत्र में सबसे बड़ा अमेरिकी कदम था - टी.पी.पी (ट्रांस पैसिफिक पार्टनरशिप) का ऐलान करना | 5 अक्टूबर, 2015 को यह समझौता किया गया | अमेरिका ने एशिया-प्रशान्त क्षेत्र के अपने सहयोगियों (आस्ट्रेलिया, जापान, मलेशिया, वियतनाम, सिंगापुर इत्यादि) के साथ मिलकर इस समझौते को पक्का किया | टी.पी.पी समझौता दो कारणों से अमेरिका के लिए बेहद अहम है | पहला कारण है, एशिया-प्रशान्त क्षेत्र में जो क्षेत्रीय एकीकरण हो रहे हैं, उनमें से अमेरिका बाहर नहीं रहना चाहता | अमेरिका का एक-चौथाई से अधिक निर्यात एशिया को है और यहाँ इसको इन क्षेत्रीय देशों के आपसी व्यापार का सामना करना पड़ रहा है | अगर अमेरिका इन क्षेत्रीय समझौतों से परे रह जाता है तो इसका फायदा अमेरिका के प्रतिद्वंदी चीन को होगा | दूसरा कारण, अमेरिका इससे बढ़ने वाली आर्थिक ताकत से चीन को युद्धनीतिक तौर पर भी घेरना चाहता है | इसके लिए वह कई तरह के हथकंडे भी अपना रहा है, जैसे फिलीपींस के जरिये चीन के ऊपर दक्षिण चीन सागर को लेकर अंतराष्ट्रीय अदालत में केस दर्ज करवाना |

इसके अलावा सैन्य कार्रवाइयों के जरिये भी अमेरिका चीन को पीछे धकेलना चाहता है | इसी का नतीजा है कि वह इस विवादग्रस्त जल क्षेत्र में अपने युद्ध पोत भेज रहा है | एक नीति के मुताबक अमेरिका वर्ष 2020 तक प्रशांत महासागर में अपनी हवाई और नौसैनिक सेना की दो-तिहाई ताकत लगाना चाहता है | प्रशांत महासागर का यह इलाका व्यापार की दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण है | इस मार्ग के जरिए हर साल 5.3 खरब डॉलर का व्यापार होता है जबकि चीन की तेल जरूरतों की 83% आपूर्ति इसी मार्ग से होती है | इसीलिए चीन को घेरने के लिए अमेरिका के लिए यह क्षेत्र बेहद अहम है |

इस मुद्दे को उभारने के पीछे अमेरिका खुद दो कारण बता रहा है | पहला कारण है कि चीन इस क्षेत्र में अपने एकाधिकार के जरिए पूरे विश्व के व्यापार को उलटे रुख प्रभावित करेगा | इस पहले कारण का कोई वास्तविक आधार नहीं है क्यों जो हमने देखा ही है कि यह क्षेत्र चीन के खुद के लिए कितना अहम है | दूसरा कारण यह कि चीन इन टापुओं के ऊपर अपनी दावेदारी पेश करके विश्व शान्ति को ख़तरा पहुंचा रहा है | ज़ाहिरा तौर पर चीन की खुद की साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षाएं हैं लेकिन इस क्षेत्र में अमेरिका का खुद का इतिहास क्या रहा है?

अमेरिका की पूँजीवादी विश्व में एक प्रभावी खिलाड़ी के रूप में दावेदारी 1898 में एक युद्ध से ही हुई थी | और वह युद्ध एशिया के ही एक देश फिलीपींस के ऊपर से स्पेनी कब्ज़ा हटाके खुद का अधिकार कायम करने को लेकर लड़ा गया युद्ध था | और एशिया में अपनी ताकत को उसने 1945 में हिरोशिमा और नागासाकी में लाखों लोगों को बम के जरिये एक ही झटके में मारकर स्थापित किया था | उसके बाद लगातार इस क्षेत्र में अमेरिका ने अपना दबदबा बरकरार रखने के लिए और अपने कम्युनिज़्म विरोध के चलते लगातार इस क्षेत्र में जनवादी सरकारों का तख्ता पलट करवा कर अपने हितैषियों को यहाँ बिठाया है और बड़े पैमाने पर आम लोगों और खासकर कम्युनिस्टों के कत्लेआम करवाए हैं | धुर दक्षिणपंथी सिंग्मान री की सरकार को बचाने के लिए और कम्युनिस्टों को सत्ता पर कब्ज़ा करने से रोकने के लिए अमेरिका ने 1950-53 तक कोरिआई युद्ध चलाया जिसमें 10 लाख से ऊपर लोगों का कत्लेआम किया गया | इंडोनेशिया और वियतनाम में दूसरे विश्व युद्ध के बाद, बीसवीं शताब्दी के सबसे भयंकर कत्लेयाम किये गए (इन युद्ध अपराधों के बारे में और जानने के लिए पाठक मज़दूर बिगुल का जुलाई 2011 और जून 2015 अंक देख सकते हैं) |

ज़ाहिरा तौर पर अमेरिका इस क्षेत्र में कोई अमन कायम करने के लिए नहीं गया है, बल्कि आर्थिक और राजनीतिक तौर पर मजबूत हो रहे अपने एक प्रतिद्वंदी चीन को उसी के पिछवाड़े जाकर घेरने के लिए गया है | इस क्षेत्र में चीन को आर्थिक, राजनीतिक और सामयिक रूप से घेरने की अमेरिका की यह कोशिशें उसकी उसी 'एशिया को धुरी' नीति का हिस्सा हैं जो ओबामा प्रशासन ने 2011 में घोषित की थी | इस नीति के ऐलान के बाद से अमेरिका लगातार इस क्षेत्र में अपने सहयोगियों के साथ मिलकर सैनिक अभ्यास और इस तरह की भड़काऊ कार्रवाइयों को अंजाम देता रहा है, फिलीपींस और अन्य देशों में तैनात अपने सैनिकों की गिनती में लगातार इज़ाफ़ा करता रहा है और जापान और दक्षिण कोरिया के साथ मिलकर लगातार नए हथियारों की खोज को अंजाम देता रहा है और साथ ही एक व्यापक आर्थिक घेराबन्दी के लिए टी.पी.पी समझौता भी स्याहीबन्द किया है |

इस तरह हम देख सकते हैं कि किस तरह एक साम्राज्यदी ताकत अमेरिका की ये कार्रवाइयां, दूसरी साम्राज्यवादी ताकत चीन के पास दो ही रास्ते छोड़ रही हैं, या तो वह अमेरिका के सामने आत्म-समर्पण करे और या फिर उसका जवाब दे | यह स्वाभाविक ही है कि चीन ने अपनी हैसियत मुताबिक दूसरा रास्ता चुना और अमेरिका को आगे के लिए खबरदार किया | इसके जरिये जहाँ चीन के सत्ताधारी वर्ग को अपने देश के लोगों में पनप रहे गुस्से को राष्ट्रवादी छींटे मारकर कुछ देर के लिए बढ़ने से रोक जा सकता है, वहीं चीन का सत्ताधारी वर्ग भी जानता है कि अमेरिका की आर्थिक हालत में लगातार गिरावट आती जा रही है और इसीलिए वह अमेरिका का आगे बढ़कर सामना कर रहा है | लेकिन दो बड़ी साम्राज्यवादी ताकतों के दरमियान ये भड़काऊ कार्रवाइयाँ और भीषण होते सुर, पूरी मानवता को एक नए संभावी युद्ध की ओर धकेल रहे हैं, चाहे वह युद्ध क्षेत्रीय हो या फिर व्यापक।

– मानव

चीन का आर्थिक संकट

(पेज 11 से आगे)

सारी संपत्ति का दोहन कर रहे हैं। चीन के सिर्फ 0.4 फीसदी घरानों का 70 फीसदी संपत्ति पर कब्ज़ा है। यह सब राज्य ने मज़दूरों के सस्ते श्रम को लूट कर हासिल किया है। लेकिन मज़दूर वर्ग भी पीछे नहीं हैं और अपने हक़ और मांगों के लिए सड़कों पर उतर रहे हैं। राज्य के दमन के बावजूद भी मज़दूर अपनी आवाज़ उठा रहे हैं। एक तरफ चीन का शासक वर्ग आर्थिक संकट के दौर में मज़दूरों को अधिक रियायतें नहीं दे सकता है और दूसरी तरफ मज़दूरों की ज़िन्दगी पहले से ही नरक में है और अब जब वे सड़कों पर उतरे हैं तो इसी कारण कि उनके पास खोने के लिए कुछ नहीं है। यह इस व्यवस्था का असमाधेय अन्तरविरोध है। इस अन्तरविरोध का समाधान मज़दूर वर्ग अपने पक्ष में सिर्फ तब कर सकता है जब वह मज़दूर वर्ग की पार्टी के अंतर्गत संगठित होकर चीनी शासकों का तख्ता पलट दे वरना संकट के ये कुचक्र चलते रहेंगे और पूँजीवादी व्यवस्था मर-मर कर भी घिसटती रहेगी।

– सनी

निकोलाई ओस्त्रोवस्की: एक सच्चे क्रान्तिकारी योद्धा और जननायक की पुण्यतिथि (22 दिसम्बर) के अवसर पर

'जो जलता नहीं, वह धुएँ में अपने आपको नष्ट कर देता है'

हज़ारों सालों से जिनके कन्धे जानलेवा मेहनत से चूर हैं, जिन्हें अरसे से हिक़ारत की निगाहों से देखा गया हो, उस मेहनतकश आबादी ने अपने बीच से समय-समय पर ऐसे मज़दूर नायकों को जन्म दिया है जिनका जीवन हमें आज के युग में तो बहुत कुछ सिखाता ही है पर भावी समाज में भी सिखाता रहेगा। निकोलाई ओस्त्रोवस्की मज़दूर नायकों की आकाशगंगा का एक ऐसा ही चमकता ध्रुवतारा है।

ओस्त्रोवस्की का जन्म 29 सितम्बर 1904 को उक्रेन के विलिया नामक गाँव में हुआ। उनके पिता मज़दूर थे पर आमदनी इतनी कम थी कि माँ और छोटी बहनों को भी खेत मज़दूरी का काम करना पड़ता था। बड़े भाई एक लुहार के अपरेन्टिस थे जो अपने मज़दूरों के साथ बेहद अमानवीय बर्ताव करता था। गरीबी ने ओस्त्रोवस्की को भी बचपन में ही मज़दूरी के भँवर में झोंक दिया। नौ साल की उम्र में गड़रिये का काम, फिर ग्यारह साल की उम्र में उक्रेन के शेपेतोवका नगर के स्टेशन के एक रेस्तरां के बावर्चीखाने में काम करते हुए और आसपास ग़रीबी और ग़ुरबत के हालातों से रूबरू होते हुए ओस्त्रोवस्की के दिल में अपने वर्ग शत्रुओं के लिए तीखी नफ़रत की ज़मीन पहले ही तैयार हो गई थी। रेस्तरां के गन्दगीभरे और दमघोंटू माहौल से बचने के लिए ओस्त्रोवस्की अपना ज़्यादातर समय भाई के साथ गुज़ारते जो कि रेलवे डिपो में एक मिस्त्री था। यहीं पर उन्होंने बोल्शेविकों से मज़दूर अधिकारों और मज़दूर क्रान्ति की बातें सीखी, रूसी क्रान्ति के नेता लेनिन और उनके विचारों के बारे में सुना।

वर्ष 1917 में हुई अक्टूबर क्रान्ति ने सोवियत रूस में मज़दूर राज कायम किया। क्रान्ति के बाद चले गृहयुद्ध ने नयी पीढ़ी के लोगों को अपनी ओर खींचा जो हर कीमत पर मज़दूर राजकाज को बचाना चाहते थे। निकोलाई ओस्त्रोवस्की भी ऐसे ही किशोरों में से थे। उक्रेन में गृहयुद्ध के दौरान ओस्त्रोवस्की और उनके अन्य मित्र उन तमाम गुप्त क्रान्तिकारी कमेटियों को मदद पहुँचाते जो प्रतिक्रान्तिकारियों और बाहरी जर्मन आक्रमणकारियों से लड़ रहे थे। अगस्त 1919 में ओस्त्रोवस्की घर से भाग गए और लाल सेना में शामिल हो गए। वे जिस भी मोर्चे पर गए एक बहादुर समर्पित योद्धा की तरह लड़ते दिखाई दिए। 1920 में उक्रेन के एक शहर लुओव में लड़ाई के दौरान वे बुरी तरह घायल हो गये और उनकी दाहिनी आँख की रोशनी चली गई। अस्पताल में दो महीने गुज़ारने के बाद उन्हें सेना से छुट्टी दे दी गई और वे वापस शेपेतोवका लौट आए। बाद में 1921 में ओस्त्रोवस्की कीव चले गए जहाँ वे एक स्थानीय कोमसोमोल (नौजवान कम्युनिस्ट संगठन) के प्रधान बने और साथ ही एक रेलवे के कारखाने में इलेक्ट्रीशियन के तौर पर काम भी करते रहे। ये वही दिन थे जब देश रोटी और ईंधन की कमी से जूझ रहा था। ईंधन की पूर्ति के लिए जंगल से शहर तक लकड़ियाँ पहुँचाने के लिए रेलवे लाइन बिछाई जानी थी। ओस्त्रोवस्की एक ऐसी ही टुकड़ी के नेता थे। हालात काफ़ी कठिन थे पर आखिरकार लाइन बिछाने में सफलता मिल गई। हालाँकि इन प्रतिकूल हालातों में किये गये कठिन परिश्रम ने ओस्त्रोवस्की के स्वास्थ्य को काफ़ी प्रभावित किया। वे अभी पूरी तरह स्वस्थ हो भी न पाए थे कि फिर उन्हें अपने कोमसोमोल साथियों के साथ मिलकर बाढ़ में से लकड़ी के पट्टे बचाकर निकालने के काम में लगना पड़ा और यह काम उन्हें बेहद सर्द पानी में खड़े होकर करना था।

आदमी की सबसे प्यारी चीज़ होती है उसकी ज़िन्दगी। उसे जीने के लिए बस एक ही ज़िन्दगी मिलती है, और उसे अपनी ज़िन्दगी को इस तरह जीना चाहिए ताकि उसे कभी इस पछतावे की आग में न जलना पड़े कि उसने अपने साल यूँ ही बर्बाद कर दिये, ताकि उसे एक क्षुद्र और तुच्छ अतीत को लेकर शर्मिन्दा न होना पड़े; उसे इस तरह जीना चाहिए ताकि जब वह मृत्युशैया पर हो, तो वह कह सके – मैंने अपनी सारी ज़िन्दगी, अपनी सारी ताक़त दुनिया के सबसे महान लक्ष्य के लिए, इन्सानियत की मुक्ति के लक्ष्य के लिए लगायी है। और इन्सान को अपनी ज़िन्दगी के एक-एक पल का इस्तेमाल करना चाहिए, क्योंकि कौन जाने कब अचानक कोई बीमारी या दुर्घटना उसके जीवन की डोर को बीच में ही काट दे।

– निकोलाई आस्त्रोवस्की

निकोलाई आस्त्रोवस्की की अमर कृति 'अग्निदीक्षा' उपन्यास के प्रथम रूसी संस्करण का आवरण चित्र

लड़ाई के दौरान उनके ज़ख़्म, बाद में टाइफस बुखार और भयंकर गठिया ने मिलकर ओस्त्रोवस्की के स्वास्थ्य को इतनी बुरी तरह प्रभावित किया कि उन्हें कीव का काम छोड़कर जाना ही पड़ा। यह बात ओस्त्रोवस्की के लिए कतई स्वीकार्य नहीं थी कि उन्हें रोगी घोषित कर दिया जाय और देश में चल रहे समाजवाद के निमार्ण के लिए किये जाने वाले राजनीतिक एवं रचनात्मक कामों से काट दिया जाय। वे लगातार पार्टी से उन्हें काम दिये जाने का आग्रह करते रहे। अन्तत: पार्टी ने उनकी इच्छा मानते हुए उन्हें एक छोटे से उक्रेनी नगर बेरोजदोव भेज दिया। वहाँ पहुँचते ही बिना समय गँवाये ओस्त्रोवस्की ने पार्टी और कोमसोमोल का काम सम्भालना शुरू कर दिया।

वर्ष 1924 में ओस्त्रोवस्की कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य बन गये हालाँकि उस समय तक आते-आते उनका स्वास्थ्य काफ़ी गिर चुका था। बेहतरीन चिकित्सा विशेषज्ञों ने उनका इलाज किया, उन्हें स्वास्थ्य लाभ के लिए सेनीटोरियम में भी रखा गया पर इन सबका भी कोई परिणाम न निकल पाया। 1926 तक आते-आते यह स्पष्ट हो गया कि ओस्त्रोवस्की को जीवनभर अब शैयाग्रस्त ही रहना होगा। तीन साल बाद उनकी आँखों की रोशनी पूरी तरह चली गयी और हाथों एवं कुहनियों को छोड़कर उनका पूरा शरीर हिलने डुलने में भी असमर्थ हो गया। कुल मिलाकर उनके अच्छे होने की अब कोई उम्मीद नहीं रह गयी थी। यह तमाम हालात ओस्त्रोवस्की के निष्क्रिय होने का भौतिक आधार बना रहे थे पर ओस्त्रोवस्की ने अपनी मानसिक दृढ़ता, आत्मनियंत्रण और समाजवादी देश और उसकी जनता के लिए मर मिटने की भावना से ताकत हासिल करके इन हालातों को चुनौती दे दी। जब पूरे देश की जनता समाजवादी लक्ष्य की ओर डग आगे भर रही थी तब उन्हें नए समाज और जीवन के निर्माण कार्य में पीछे रहना नामंज़ूर था। सारे शारीरिक कष्टों को झेलते हुए वे नए उत्साह और शक्ति के साथ लक्ष्य प्राप्ति की नयी योजनाओं में जुट गये। उन्होंने कलम और लेखनी को अपना नया हथियार बनाया। वे ऐसी किताब लिखना चाहते थे जो बीते ज़माने के बहादुर संघर्षों की कहानी बयान करे और नयी पीढ़ी को कम्युनिस्ट भावना के अनुसार ढ़ालने में मददगार साबित हो।

आखिरकार नवम्बर 1930 में एकदम अन्धे और अशक्त होने पर ओस्त्रोवस्की ने अपने पहले उपन्यास 'अग्निदीक्षा' पर काम करना शुरू कर दिया। चूंकि उनकी पत्नी सारा दिन अपने और सार्वजनिक कामों में व्यस्त रहती तो पहले सहायता करने वाला कोई न होता इसलिए ओस्त्रोवस्की स्वयं अपनी अकड़ी हुई उंगलियों से पेंसिल को जैसे-तैसे पकड़कर लिखते। ऐसे करते हुए अकसर ही नए शब्दों की रेखाएं पिछले शब्दों की रेखाओं पर चढ़ जाती जिससे शब्द विकृत हो जाते। बाद में इस कठिनाई को दूर करने के लिए एक यंत्र बनाया गया जो काफ़ी मददगार साबित हुआ। एक सादे गते का दोहरा टुकड़ा लिया गया, जिसके ऊपर वाले हिस्से में आठ मिलीमीटर चौड़ी सीधी लाइनें काट ली गयीं। इसके अंदर चलती हुई पेंसिल टेढ़ी पंक्ति में नहीं लिख सकती थी और इस तरह हर पंक्ति सीधी और स्पष्ट होती। ओस्त्रोवस्की ज़्यादातर रात के वक्त काम करते जब सब सो रहे होते। सोने से पहले उनकी पत्नी या माँ काग़ज़ और बहुत सी पेंसिलें छीलकर उनके पास रख देती। बाद के समय में उन्होंने अपनी पत्नी, बहन और आत्मीय मित्रों को बोलकर लिखवाया। इस तरह जून 1933 में यह किताब पूरी हुई मगर इसके बाद भी ओस्त्रोवस्की नहीं रुके। कुछ समय बाद ही नयी ऊर्जा से ओतप्रोत होकर उन्होंने अपने पहले उपन्यास 'अग्निदीक्षा' के नये संस्करण पर काम करना शुरू कर दिया। इसी बीच उन्होंने अपनी दूसरी पुस्तक 'तूफान के बेटे' पर भी हाथ लगा लिया। यह वह समय था जब दूसरे विश्वयुद्ध के बादल मंडरा रहे थे। अंग्रेज़-अमेरिकी साम्राज्यवाद से प्रोत्साहन पाकर जापानी और जर्मन फासिस्ट समाजवादी रूस के खिलाफ़ युद्ध की तैयारी कर रहे थे। ओस्त्रोवस्की अपनी नयी पुस्तक के ज़रिये समाजवादी रूस में पली-बढ़ी नयी पीढ़ी को इन दुश्मनों से आगाह करवाना चाहते थे। वे इस पुस्तक का केवल पहला भाग ही पूरा कर पाये। जिस दिन 'तूफान के बेटे' का पहला भाग प्रकाशित हुआ ठीक उसी दिन 22 दिसम्बर 1936 को निकोलाई ओस्त्रोवस्की की मृत्यु हो गयी।

ओस्त्रोवस्की ने एक बार कहा था 'इससे अच्छी बात किसी आदमी के लिए और क्या हो सकती है कि वह मरने के बाद भी मानवता की सेवा करता रहे।' ओस्त्रोवस्की जीवन पर्यन्त जनता के लिए और मज़दूर राज कायम करने के लिए जनता का नेतृत्व करने वाली बोल्शेविक पार्टी की सेवा तो करते ही रहे पर मृत्यु के बाद भी इस सच्चे जननायक और योद्धा ने अपनी रचनाओं से मानवता की सेवा के उदात्त लक्ष्य को जारी रखा।

ओस्त्रोवस्की का जीवन युवा क्रान्तिकारियों के लिए एक महान आदर्श है। जनता के लिए, कम्युनिज़्म के उदात्त लक्ष्य के लिए जीना किसे कहते हैं; और क्रान्ति के प्रति सच्चे एवं नि:स्वार्थ समपर्ण की भावना कैसी होती है; समाजवाद के लक्ष्य के लिए एक उत्साही, क्रियाशील और अडिग सैनिक का दृष्टिकोण कैसा होना चाहिए इसका प्रातिनिधिक उदाहरण ओस्त्रोवस्की का छोटा मगर सार्थक जीवन है।

– श्वेता

उड़न छापाखाना

रूस की मज़दूर क्रान्ति के दौरान गुप्त अख़बार की छपाई की रोमांचक और दिलचस्प दास्तान

वेरा मोरोज़ोवा की संस्मरण पुस्तक 'दिसम्बर डेज़' का अंश

यह एक अद्भुत छापाखाना था : इसके पास न तो रोटरी प्रेस, टाइप फेस थे और न ही कागज। इसके पास अपना दफ्तर तक नहीं था। लेकिन बगावत के दिनों में इसने क्रान्तिकारी अखबार इज्वेस्तिया निकालने का इंतजाम तो कर ही लिया। बोल्शेविकों ने इसे "फ्लाइंग प्रेस" नाम दिया था।

इसके कर्मचारियों में पंद्रह टाइप-सेटर और पचास मज़दूर गश्ती दल के सदस्य थे। छपाई दफ्तर उस समय मास्को का कोई भी छापाखाना हो सकता था। अकेले अथवा छोटे समूहों में मजदूर उस छापाखाने में पहुंच जाते जिसे उन्होंने अखबार की छपाई के लिए चुना होता। वे आनन-फानन में बरामदों को घेरते हुए सभी प्रवेश एवं निकास द्वारों पर कब्जा जमा लेते। इसमें सबसे महत्वपूर्ण बात यह रहती थी कि वे सड़क से पहचाने नहीं जाएं।

इस दरम्यान, मास्को का जीवन सामान्य तरीके से चलता रहता। पुलिस और घुड़सवार सैनिक शहर की निगरानी करते रहते, पुलिसिया जासूस दौड़ते रहते, शहर के बाशिंदे अपने-अपने ठिकानों पर पहुँचने की जल्दी में रहते।

बाज दफा, बोल्शेविक जहाँ अखबार छाप रहे होते उस छापेखाने पर मुलाकाती मौजूद रहते, अथवा पुलिस के जासूस अचानक धमक पड़ते। उन्हें घुसने दिया जाता। और वे तबतक वहाँ बैठे रहते जबतक पूरा अंक छप नहीं जाता। यह "फ्लाइंग प्रेस" का लौह नियम था। पेज कम्पोज़ किया जाता, उनके पन्ने बनाए जाते, और उन्हें रोटरी प्रेस पर लगाया जाता। मज़दूर गश्ती दल के सदस्य सभी दरवाजे और खिड़कियों पर खड़े होकर प्रिंटरों की सुरक्षा करते, और छापाखाने पर चहलकदमी कर रही पुलिस पर नजर रखते। इस बीच, खुरदुरे कागज पर छप रहे अखबार के बण्डल बड़े से और बड़े हो जाते। गार्ड छपाई खत्म होने पर कैरियर बन जाते। इन कीमती कागजों को सावधानीपूर्वक कोट के नीचे छिपाते हुए वे होशियारी से छापेखाने से बाहर आ जाते। कभी-कभार वाहन "फ्लाइंग प्रेस" के बाहर इंतजार में खड़ा होता, और अखबार सीटों के नीचे छिपा दिए जाते। इसे बहुत बड़ा सौभाग्य माना जाता – अखबारों की पूरी खेप तत्काल वहां से रवाना हो जाती।

लेकिन अन्य मौकों पर, कार्यकर्ता ऐसे वक्त अखबार छापते जब गश्ती दल के सदस्य सैनिकों के साथ गोलीबारी कर रहे होते। रोटरी प्रेस खटपट करते, छपे कागज इकट्ठे किए जाते रहते और गोलियों की तड़तड़ाहट गूंजती रहती। एक बार गवर्नर जनरल दुबासोव ने "फ्लाइंग प्रेस" के सामने सैनिकों की दो कंपनियां, एक स्क्वाड्रन घुड़सवार तैनात करने के साथ दो कानून लागू कर दिए, और छापाखाने को एक जब्त किले के रूप में तब्दील कर दिया गया था। गश्ती दल के सदस्यों ने घुड़सवारों के खिलाफ मोर्चा लिया, और फिर सैनिकों ने गोलीबारी शुरू कर दी, और गोले दाग कर बिल्डिंग में आग लगा दी गयी। मुट्ठी भर गश्ती दल के सदस्यों ने धुआं भरे कार्यालय को बचाया। छपाई कार्यालय बैरिकेड बन गया, और अखबार –- इसका बैनर।

शबोलोव्का स्ट्रीट तक जाने वाली एक अँधेरी, संकरी गली में एक गुमनाम सा मकान है जिसपर किसी का ध्यान नहीं जाता। बर्फ के ढेर के बीच से एक संकरा रास्ता एक छोटे, फेल्ट से ढंके दरवाजे तक जाता है।

इसी मकान को मज़दूर गश्ती दल के सदस्यों ने उस सर्द चांदनी रात को अपना ठिकाना बनाया था। नन्हा कोस्त्या मकान की छांव में खड़े होकर पहरेदारी कर रहा था। थोड़ी दूरी पर सावेल्येव खड़ा था, उसका चेहरा उसकी कॉलर और हैट से छिपा हुआ था, हैट उसके माथे पर नीचे तक खिंचा हुआ था। इतनी रात को किसी के आने की आहट होने पर, कोत्स्या बर्फ पर चलते हुए उससे मिलने आया। उसकी ओर बहुत ध्यान से देखने के बाद, वह उसे सावेल्येव के पास लेकर गया। सावेल्येव मकान के पास अपनी जगह से हटा और इस बात की जांच यह सुनिश्चित करने के लिए की कि आगंतुक पासवर्ड जानता है। इसके बाद दरवाज शान्तिपूर्वक खोला गया।

इस गुप्त अपार्टमेंट के मालिक, लेथ टर्नर एपिफानोव, ने अपने मेहमानों का गर्मजोशी से स्वागत किया। वहां मेज पर एक समोवार खुशी से हनहना रहा था, और चायदानी एक दिलचस्प टी-कोजी गुड़िया की गद्दीदार, बहुरंगी स्कर्ट से ढंकी हुई थी। इसके आगे छोटी गोल-गोल सफेद बिन्दियों वाले हरे कप कतार में सजे हुए थे। मेहमान बामुश्किल बने स्टूलों पर विराजमान थे। इस महीने यह तीसरी बार था जब एपिफानोव अपना जन्मदिन मना रहा था।

रोजालिया ने सावधानीपूर्वक इज्वेस्तिया का पहला अंक खोला, और प्रिंटर की स्याही की महक उस छोटे से कमरे में फैल गयी। वह लालटेन के पास आयी, और अब उसका खूबसूरत चेहरा, उसके घने हल्के भूरे बाल और सुनहली पुतलियों वाली भूरी आंखें नजर आ रही थीं। उसके बाएं गाल पर मौजूद एक दाग पर शायद ही ध्यान जाता था।

सावेल्येव ने लालटेन की बत्ती को ठीक किया और रोशनी घुमा दी। रोजालिया ने नाक पर अपना चश्मा ठीक किया और पढ़ना शुरू किया: मास्को सोवियत ऑफ वर्कर्स डेप्युटीज, रूसी सामाजिक-जनवादी मजदूर पार्टी की कमेटी और केन्द्रीय समूह, एवं समाजवादी-क्रान्तिकारियों की कमेटी की ओर से पारित प्रस्ताव:

"आम राजनीतिक हड़ताल की घोषणा करना जो बुधवार, 1 दिसम्बर को दोपहर बारह बजे मास्को में शुरू होगी, उन्हें उम्मीद है कि यह हड़ताल एक सशस्त्र विद्रोह में विकसित हो जाएगी। "

ВТОРОЙ ГОДЪ ИЗДАНІЯ.

РОССІЙСКАЯ СОЦІАЛЬ-ДЕМОКРАТИЧЕСКАЯ РАБОЧАЯ ПАРТІЯ

ИСКРА

„Изъ искры возгорится пламя!"...
Отвѣтъ декабристовъ Пушкину

№ 18 — 10-го МАРТА 1902 ГОДА. — № 18

СЛАВЯНЕ И РЕВОЛЮЦІЯ

ИЗЪ НАШЕЙ ОБЩЕСТВЕННОЙ ЖИЗНИ

ПРАВИТЕЛЬСТВЕННЫЯ ЗВѢРСТВА ВЪ МОСКВѢ

क्रान्तिकारी मज़दूर अख़बार 'इस्क्रा'

एक निस्तब्ध खामोशी कमरे में पसर गयी। एकमात्र आवाज नौजवान महिला की थी और लोहे के पेंडुलम वाली घड़ी की अत्यधिक तेज टिक-टिक की आवाज थी। वर्कर्स की नजरें कागज से चिपकी हुई थीं।

"यदि कोई महज अक्टूबर से बहे समस्त खून और आंसुओं को इकट्ठा करे तो सरकार उसमें डूब जाएगी, कॉमरेड! लेकिन ज़ार सरकार विशेष प्रकार की दुर्भावना से मज़दूर वर्ग पर हमले कर रही है।।"

रोज़ालिया ने मज़दूरों की तरफ देखा। यहां एपिफानोव था, हट्टा-कट्टा और चौड़े कंधे वाला, जिसका चेहरा खुला हुआ और आंखें तिरछी काली थीं। उसने गौर किया कि जब वह पढ़ रही थी तो कैसे उसने अपने बड़े, काम में पगे हाथों की मुट्ठियां बांध रखी थीं। उसके बगल में कोस्त्या देस्यात्निकोव बैठा था। हल्की मुड़ी हुई उंगलियों के साथ उसके पतले, कमजोर हाथ किसी टाइप-सेटर की बजाय किसी संगीतज्ञ के हाथ जैसे ज्यादा थे। उसने अपने हाथ में बिना जली सिगरेट थाम रखी थी, लेकिन रोज़ालिया के हित में उसे सुलगाया नहीं। क्षय रोग से पीड़ित दूसरे सभी लोगों की तरह, वह किसी भी प्रकार के धुएं के प्रति बेहद संवेदनशील थी, और कोत्स्या यह बात जानता था। वह अपनी बीमारी के बारे में शायद ही सोचता था। उसके चेहरे पर गंभीरता का ऐसा भाव था जो कम ही देखने को मिलती है। अदामोविच कंधों को हल्का झुकाकर बैठा था, उसके हाथ उसके घुटनों के बीच सटे हुए थे। यद्यपि वह संगठन में अपेक्षतया नया था, उसने जल्दी ही खुद की पहचान एक दृढ़ योद्धा के रूप में बना ली। उसके चौड़े, मांसल कंधों पर साटन की एक नीली कमीज लिपटी हुई थी। उसने समय-समय पर अपनी उंगलियां अपने घने, घुंघराले बाल में फिराई। सावेल्येव उसकी बगल में बैठा था। उसके चौड़े माथे पर झुर्रियों की सलवटें थीं, और उसने अपनी घनी भौहों को एकसाथ बांध रखा था। रोज़ालिया ने इन लोगों को देखा और महसूस किया कि वे सब, एक-दूसरे से इतने भिन्न, एक महान जुनून के लिए एक साथ जुड़े थे – दूसरों की सेवा करना, और इसे वह अन्य सभी चीजों से ज्यादा मूल्यवान मानती थी। वह कौन सी चीज थी जिसने उन्हें रात भर गुप्त अपार्टमेंट में बैठाए रखा? जवाब वह जानती थी : सामने आ रही लड़ाई। उनका जमीर उन्हें महज खड़ा रहकर देखते रहने की इजाज़त नहीं देता था।

समोवार तेजी से गड़गड़ाने लगा।

"रोज़ालिया सामोलोव्ना, तुम्हें पता है कि आज क्या हुआ।।" देस्यात्निकोव ने दूसरे लोगों की तरफ शरारतपूर्ण तरीके से पलक झपकाते हुए उसका ध्यान भंग किया।

"हां, मैंने सुना, कोस्त्या। बोलते रहो और हमें बताओ कि पहला अंक कैसे छपा। " उसने अपना चश्मा उतारा और उसके मुस्कुराते चेहरे की ओर देखा।

देस्यात्निकोव खुशी से झेंप गया। वह यह कहानी सुनाना चाह रहा था, पर खुद को रोक रखा था, इस डर से कि इससे ऐसा लग सकता था कि वह दिखावा कर रहा हो। अब चूंकि उससे कहा गया, इसलिए यह अलग बात थी।

"इस तरह घटना हुई: हमारे गश्ती दल के सदस्यों ने एक छपाई कार्यालय पर कब्जा कर लिया। हमारे आदमी सभी दरवाजों पर तैनात हो गए, और हम टाइप-सेटिंग कक्ष में पहुंच गए। हम बहुत जल्दी में थे और हमने टाइप-सेटिंग खत्म ही की थी कि वहां का मालिक आ गया। मि. सिटिन खुद ही। वह मुख्य दरवाजे से आया। एक बीवर हैट और बीवर कॉलर के साथ वह महत्वपूर्ण व्यक्ति लग रहा था। पेट्रोल मेंबर दरवाजे पर, हमारे लोगों और कुश्नारोव प्रेस के लोगों के साथ खड़े थे। किसी ने भी किसी प्रकार के मतभेद का संकेत नहीं दिया, और उसे मुख्य कार्यालय तक जाने का रास्ता दिया गया। उसने क्रोधपूर्ण नजरों से देखा लेकिन बोला कुछ नहीं। और इस तरह मैं बॉस को कार्यालय तक ले गया। यह एक वृहद कमरा था। सिटिन का बेटा फटा-पुराना छात्रों का जैकेट पहने एक नीची हत्थेदार कुर्सी पर बैठा था, और वहां, हमेशा की तरह, उसके हाथ में एक किताब थी। उसने अपने मोटे लेंस वाले चश्मे से ऊपर देखा और फिर से अपनी नाक किताब में धंसा दी। निदेशक चारों ओर मखमली आराम कुर्सियों पर बैठे थे। और उनके बीच में यह फेरेट (नेवले की जाति का एक जानवर) जैसी शक्ल वाला फ्रोलोव था। उफ! मैं उसे पसंद नहीं करता, यह कहने के लिए मुझे खेद है, हालांकि वह हरेक को बता रहा था कि वह मज़दूर वर्ग के परिवार से है।। मुझे भी, केवल

(पेज 15 पर जारी)

उड़न छापाखाना

(पेज 14 से आगे)

मैं ही यह बात निदेशक को कभी नहीं बताऊंगा!" और कोस्त्या जोर से हंसा और सभी हंसने लगे।

सावेल्येव ने अपने गालों पर गड्ढे लाते हुए जोरदार ठहाका लगाया।

"और इस तरह मैं इंतज़ार कर रहा हूं," कोस्त्या अपने रुमाल में खांसने के लिए रुका और फिर बोलना जारी रखा, "यह देखने के लिए कि आगे क्या होने वाला है।।" कमरे के बीच में जहां शेर के पैरों वाली यह मेज है, और उसपर कांसे की एक दावात और टेलीफोन रखा है, एक सशस्त्र पेट्रोल मेंबर फोन के आगे खड़ा है। कुशनारोव के प्रेस का एक तगड़ा साथी, फ्रोलोव दौड़ता हुआ सिटिन के पास आता है, उसका पूरा चेहरा लाल और दागदार था।

"'इवान दिमित्रिएविच,' वह धीमी आवाज में बोलता है, 'हो क्या रहा है हमारे प्रेस मे? मशीनें निष्क्रिय खड़ी हैं, रिवॉल्वर लिए लोग सीढ़ियों पर ऊपर और नीचे भाग रहे हैं, हम निदेशकों को कार्यालय में बैठाए रखा जा रहा है।'

"'ये आपको मुझे बताना है,' सिटिन ने उसकी बात काटी, उसकी आवाज कठोर और घबरायी हुई थी। 'आखिरकार आप एक निदेशक हैं।।'

"'आज आम हड़ताल होने जा रही है, पिताजी,' सिटिन का बेटा कहता है, वह अभी तक अपनी किताब में उलझा हुआ है, 'वे पहले ही कुशनारोव के प्रेस में हड़ताल कर रहे हैं।।'

"'इसीलिए हमें यहां आना पड़ा। एक और हड़ताल!' फ्रोलोव फट पड़ा, और कमरे में चारो ओर अपने नाज़ुक छोटे कदमों से तेज-तेज चलने लगा। 'हमनें उन्हें ज्यादा पैसे दिए, उनके काम के घंटे कम किए।। लेकिन नहीं, हमारे मज़दूरों के लिए इतना काफी नहीं है।। पुलिस!' वह चीखा, और फोन की ओर झपटा।

"लेकिन गश्ती दल के सदस्य ने उसे खूंखार नज़रों से देखा और अपने हाथ रिसीवर पर रख दिए। फ्रोलेव भहरा गया और कैथरिन महान की एक वृहद तस्वीर के नीचे पड़े सोफे पर लुढ़क गया। उसने सोफे के हत्थे पर अपनी उंगलियां बजाई; लेकिन शान्त नहीं हो पाया, सिटिन कुछ सोचते हुए खिड़की तक गया और बाहर सड़क पर देखने लगा।

"'क्या हम यहां दिन भर बैठने वाले हैं?' फ्रोलोव ने फिर बोलना शुरू किया।

"'जब तक वे अखबार छाप नहीं लेते हैं,' छोटे सिटिन ने उतने ही शान्त लहजे में जवाब दिया, वह अब भी अपनी किताब के पन्ने पलट रहा था।

"'यहां है एक वास्तविक मर्द,' मुझे लगता है। और वास्तव में मैं उसके लिए सम्मान महसूस करने लगा, बंधुओ।।"

रोज़ालिया ने अपने विचारों में देस्यात्निकोव के सजीव चेहरे का अध्ययन किया। एक मजबूत, शानदार व्यक्ति। वह गंभीर रूप से बीमार था, फिर भी उसने अपने उद्देश्य के लिए कैसे कुर्बानी दी। और वह अपने छोटे चचेरे भाई को लेकर इतना चिंतित था। वह कितना दुखी हुआ होगा जब उसे लड़के को एक फैक्ट्री में काम करने के लिए भेजना पड़ा होगा।। उसने उसे शिक्षा दिलाने का सपना देखा था, लेकिन कुछ कर पाने में असहाय था। वह किसी तरह रोजी-रोटी जुगाड़ पाता था। और लड़का इतना तेज था – उसे स्कूल न भेज पाना उसके लिए शर्म की बात थी।

उसने अपने मन में दुख की लहर महसूस की। इस तरह के कितने लड़के, नंगे पांव और भूखे, रूस में भटक रहे हैं।।

कोस्त्या फिर भीषण तरीके से खांसा, इस बार जोर लगाने से उसकी आंखों में आंसू निकल आए। एपिफानोव ने एक गिलास में पानी उड़ेला और उसे बढ़ा दिया। कोस्त्या ने छोटी-छोटी घूंटों से पानी पिया, और धीमी आवाज में बोलना जारी रखा :

"'उन्हें हमारे प्रेस में अखबार छापने की अनुमति हरगिज नहीं दी जानी चाहिए,' फ्रोलोव गुस्से में बोला, 'पहले वे केवल टाईप-फेस चुराते थे, अब उन्होंने पूरे प्रेस पर कब्जा कर लिया है। हम किस लिए आए हैं!' और उसके हाथ टेलीफोन रिसीवर के लिए बढ़े।

"और एक बार फिर वह गश्ती दल के सदस्य की दिशा में दौड़ा। यह एक हट्टा-कट्टा आदमी था। वह चट्टान की तरह खड़ा हो गया। फ्रोलोव की आंखें चमकीं और वह फिर सोफे पर ढह गया। अचानक मैंने कार्यालय के आगे वाले कमरे से आ रहीं चीखें और शोरगुल सुनी, सिटिन और मैं भागते हुए वहां पहुंचे और देखा कि वर्कर्स पेट्रोल मेंबरों ने एक युवक का कॉलर थाम रखा था। उसने अच्छे कपड़े पहन रखे थे – जो मज़दूर जैसे नहीं थे। वह बतौर ग्राहक कार्यालय में आया था, लेकिन वास्तव में वह हरामी कज्जाकों को बुलाना चाहता था। उसने सूंघ लिया था कि हम अखबार छाप रहे हैं। वह टेलीफोन की ओर लपका, लेकिन तभी पेट्रोल मेंबरों ने उसे पकड़ लिया। हमेशा की तरह, मेरा छोटा चचेरा भाई सामानों के बीच में था। और उसने तुरंत ही उस नीच को पहचान लिया, 'पुलिस का जासूस, पुलिस का जासूस!' सभी व्यक्ति एक साथ चिल्ला पड़े। उन्होंने उसे रोटरी प्रेस कक्ष में खींच लिया, जहां छपाई का काम पहले ही संपन्न हो चुका था और चारों तरफ केवल कागज के सादे शीट पड़े हुए थे। रोलर निकालकर धुल दिए गए थे। पेट्रोल मेंबर अपनी कोटों के नीचे अखबार भरते हुए उन्हें बांटने की तैयारी कर रहे थे।"

"लेकिन तुम उसे रोटरी प्रेस कक्ष में क्यों खींच ले गए?" रोज़ालिया ने अपनी भौहें उचकाते हुए पूछा।

"यह प्रेस की सबसे बड़ी शॉप थी," देस्यात्निकोव ने उदारतापूर्वक कहा। "हर व्यक्ति वहां भागा चला आ रहा था। केवल पेट्रोल मेंबर ही दरवाजों पर तैनात थे – मैंने ऐसा सुनिश्चित कर रखा था, क्योंकि सभी लड़के जवान और गर्म खून वाले थे। छपाई करने वाले चिल्ला रहे थे: 'चलो बदमाशों को पीटकर बाहर करें! उन्हें प्रेस से भगाएं!'"

रोज़ालिया मुस्कुराई। कोस्त्या ने प्लेट से एक अदरक वाली ब्रेड (जिंजरब्रेड) उठाई, और थोड़ी हिचकिचाहट के साथ उसे अपनी जेब में रख लिया। "अपने छोटे चचेरे भाई के लिए," रोज़ालिया ने सोचा। एपिफानोव कपों में कड़क, खुशबूदार चाय उड़ेलते हुए हड़बड़ा गया।

"वहां यह पुराना छपाई करने वाला था जो कभी भी ज्यादा नहीं बोलता था, लेकिन आज वह खुद को रोक नहीं पाया।" किसी कपड़े से प्रिंटर की स्याही अपने हाथ से पोछते हुए उसने कहा: 'वह प्रेस में आने का अभ्यस्त नहीं होगा,

रूसी क्रान्ति के नेता लेनिन एक कारखाने के मज़दूरों से बात करते हुए

वह बहुत मोटा है। और मशीन को बर्बाद करना शर्म की बात होगी।। बेहतर होगा, उसपस प्रिंटर की स्याही उड़ेल दी जाए और उसकी पीठ पर लिख दिया जाए: "जासूस – विश्वासघात के लिए दंडित!" "इसे रंग दो और बाहर फेंक दो" जब कोई चीज अच्छी नहीं होती तो ऐसा कहा जाता है। चलो उसे पिछले दरवाजे से बाहर फेंक दें और राहगीरों को आनन्द उठाने दें।'

"वह व्यक्ति कांपने लगा, कागज की माफिक सफेद पड़ गया, और अपने छोटे बच्चों की दुहाई देते हुए साथियों से उसके साथ नरमी से पेश आने के लिए भीख मांगने लगा। ठीक है, हम रूसी लोग बहुत ही दयालु हृदय वाले हैं, जैसा कि आप जानती हैं। इसलिए उन्होंने उसका रिवॉल्वर ले लिया और उसके पिछवाड़े बढ़िया तरीके से धक्का मारा जिससे वह उछल कर प्रांगण में जा गिरा। और जब वर्कर्स पेट्रोल मेंबर पूरे शहर में अखबार बांट रहे थे, हम लोगों ने बैरिकेड लगाना शुरू कर दिया। इस तरह अखबार का पहला अंका छपा!"

"बहुत बढ़िया!" सावेल्येव पूरे जोश से चिल्लाया, और कोस्त्या देस्यान्तिकोव के कंधे पर थपकी दी।

कोस्त्या ने अपनी थकी टांगें फैलाई; अंततः अपनी सिगरेट सुलगा ही ली और गहरा कश लिया। रोज़ालिया बोलती इससे पहले उसने इस तरह अपनी आंखें सिकोड़ीं जैसे उसके पास इससे संबंधित कुछ और भी मजेदार बातें हैं। "सुधरने वाला नहीं है," उसने धीमे से मुस्कुराते हुए मन में सोचा। एक हल्की-फुल्की कहानी के उनकी खतरे से भरी जिन्दगियों में क्या मायने हैं।

मेहमानों ने किसी मनोरंजक कहानी का पूर्वानुमान लगाते हुए पहले ही मुस्कुराना शुरू कर दिया।

"कल मैं पर्चे लेकर ईनेम की कैंडी फैक्ट्री जा रहा था। चारों ओर नज़र डालते हुए मैंने ध्यान दिया कि वहां कोई मेरा पीछा कर रहा है। मैं एक संकरी गली में मुड़ा और वह ठीक मेरे पीछे था, इसलिए मैं पीछे की गली में फांद गया, लेकिन वह बदमाश उन्हें भी जानता था। मैं वाहन ले लेता, लेकिन ऐसा लगता था कि मैं पीछा नहीं छुड़ा पाउंगा। मैं बुरी तरह थका हुआ था, मेरे पैर शिथिल थे, और मेरा गला सूखा हुआ था; अगर वे मुझे पकड़ लेते, मैं सोच रहा हूं – यह अंत होता, गैरकानूनी गतिविधियों में मुझे फांसी हो जाती। मैंने फिर से देखा – वह अभी तक मेरे पीछे था, केवल मैं देख सकता था कि वह अपनी ताकत खो रहा है, लेकिन गिर नहीं रहा। यह आदमी स्पष्ट रूप से हट्टा-कट्टा था।"

"अचानक मैंने खुद को सेंट बारबरा चर्च के सामने पाया," कोस्त्या बोलता रहा, "बचपन में मैं अपने पिता के साथ वहां जाया करता था। यह एक बहुत ही छोटा चर्च है, भव्यता जैसी कोई चीज नहीं। अचानक ही मैंने सोचा: मैं अन्दर जाऊंगा और पांच कोपेक की मोमबत्ती खरीदूंगा और महान आत्मा के सामने घुटनों के बल शीश नवाऊंगा।"

उसके शब्द जोरदार ठहाकों में डूब गए, कोस्त्या खुद भी हंस रहा था।

"और इस तरह, मैं अपने घुटनों के बल बैठा था, अपनी सांस थामे हुए, और समय-समय पर जासूस पर नज़र डालते हुए। वह एकदम हतप्रभ था। शायद वह सोच रहा था: 'अह, मैं कितना बेवकूफ हूं – गलत आदमी का पीछा कर रहा हूं।।' मैं घुटनों के बल झुका रहा जैसे कि प्रार्थना कर रहा हूं। वह कुछ देर वहां खड़ा रहा, एक पैर से दूसरे पैर पर, उन बुजुर्ग महिलाओं के बीच बुरा महसूस करते हुए जो किनारे हटने के लिए उसे बोल और देख रही थीं। इसलिए उसने निकास की ओर अपना कदम बढ़ाया, और मैं शान्तिपूर्वक नीचे झुका रहा। जासूस ने एक बार और मेरी तरफ देखा – कितना दुष्ट नजर आ रहा था! मैं इसे कभी नहीं भूल पाउंगा।। इस तरह मैं बच गया, शुक्रिया सेंट बारबरा।।"

दरवाज हल्की चरचराहट के साथ खुला और एक दुबले और कमजोर नजर आ रहे छात्र संदेशवाहक ने अन्दर प्रवेश किया। उसने अपनी कॉलर से बर्फ झाड़ी और अपने आस पास कॉमरेडों के हंसते हुए चेहरों को आश्चर्य से देखा। उसने अपने ऊनी दस्ताने उतारे और धुंध चढ़े चश्मे को पोछने लगा।

"बदकिस्मती से – उन्होंने मरात और वसीलयेव को पकड़ लिया," उसने धीमे से कहा, लगभग अपराधबोध से।

अनुवाद: संजय श्रीवास्तव

RNI No. UPHIN/2010/36551
डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2014-2016
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 20, प्रत्येक माह

चीन के बाद अब भारत के मज़दूरों के लहू को निचोड़ने की तैयारी में फ़ॉक्सकॉन

चीन में मज़दूर आत्महत्याओं के लिए कुख्यात कम्पनी को भारत में अपने प्रयोग दोहराने की मोदी ने दी खुली छूट

एप्पल, एचपी, डेल्ल और सोनी जैसी जानी-मानी कम्पनियों के लिए आईफ़ोन, आईपैड तथा अन्य महँगे इलेक्ट्रॉनिक साजो-सामान बनाने वाली ताइवानी कम्पनी फ़ॉक्सॉन ने चीन के बाद अब भारत को अपना इलेक्ट्रॉनिक औद्योगिक केन्द्र बनाने का ऐलान किया है। महाराष्ट्र में लगभग 12 फ़ैक्टरियाँ खोलने का करार फ़ॉक्सकॉन पहले ही कर चुकी है। इसी साल अगस्त के महीने में वह और महाराष्ट्र सरकार इस संबंध में समझौता पत्र पर हस्ताक्षर भी कर चुके हैं और महाराष्ट्र सरकार ने प्लांट लगाने के लिए पुणे के पास तालेगाँव में 1500 एकड़ जमीन की पेशकश भी की है। इसके अलावा मोदी के "गुजरात विकास मॉडल" की बदौलत भारत के बड़े पूँजीपतियों की लिस्ट में शामिल हुए अदानी के साथ मिलकर भी फ़ॉक्सकॉन की गुजरात में एक प्लांट शुरू करने की योजना है। साथ ही फ़ॉक्सकॉन की, स्नैपडील और माइक्रोमेक्स जैसी भारतीय कम्पनियों की पार्टनरशिप में भी निवेश करने की योजना है।

ग़ौरतलब है कि फ़ॉक्सकॉन मशहूर कम्पनी एप्पल की सबसे बड़ी सप्लायर है और विश्वभर में होने वाले इलेक्ट्रॉनिक्स सामान के उत्पादन का 40 फ़ीसदी अकेली यही कम्पनी करती है। इसके ज़्यादातर प्लांट चीन में हैं। चीन के 9 शहरों में इसकी 12 फ़ैक्टरियाँ हैं जिन में लगभग 14 लाख मज़दूर काम करते हैं। एप्पल के लिए यह आईपैड और आईफ़ोन जैसे महँगे इलेक्ट्रॉनिक गैजेट बनाती है जो तमाम देशों के खाये-पिये-अघाये वर्ग के लोगों की जेबों का सिंगार बनते हैं। लेकिन इन खाये-पिये-अघाये वर्ग के लोगों को इस बात का एहसास तक नहीं है कि जिन आईपैडों और आईफ़ोनों को हाथ में ले वे इठलाकर चलते हैं उनको बनाते समय मज़दूरों को कितनी नारकीय परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। फ़ॉक्सकॉन के प्लांटों में मज़दूरों को दिनभर एक ही जगह बैठकर मोबाइल और लैपटॉप के महीन पुर्जों को असेम्बली लाइन पर 12-12 घण्टे तक बनाने का नीरस काम करना पड़ता है। जब एप्पल या कोई अन्य कम्पनी कोई नया उत्पाद बाज़ार में उतारती है तो इसकी माँग को तेजी से पूरा करने के लिए मज़दूरों से हफ़्तेभर में 120 घण्टे से ऊपर काम कराया जाता है। यही काम 24 घण्टे और सातों दिन चलता है। असेम्बली लाइन की गति बढ़ाने के लिए मज़दूरों पर कैमरों के ज़रिये निगरानी रखी जाती है। और थोड़ा सा धीमा होने पर मज़दूरों को सरेआम ज़लील किया जाता है और उनसे गाली-गलौज तक की जाती है। फ़ैक्टरी में मैनेजर, इंस्ट्रक्टर और गार्ड गुण्डों की तरह व्यवहार करते हैं। 12-14 साल के बच्चों तक से भी नये आईफ़ोन की स्क्रीन को चमकाने जैसे काम करवाये जाते हैं। मज़दूरों को कम्पनी अपने कैम्पस में ही रहने की जगह देती है। इस जेलनुमा जगह पर 12 बाय 12 के कमरों में कई मज़दूरों को ठुँसकर रहना पड़ता है। अपनी इन भयावह स्थितियों के लिए यह कम्पनी पहली बार तब चर्चा में आयी जब वर्ष 2010 में ही इसके 18 मज़दूरों ने आत्महत्या करने की कोशिश की, जिनमें से 14 मज़दूरों की मौत हो गयी। इसके बाद दुनिया भर में फ़ॉक्सकॉन और एप्पल की आलोचना हुई। उस समय अपनी तस्वीर सुधारने के लिए फ़ॉक्सकॉन तथा एप्पल ने मज़दूरों के काम के हालात सुधारने का वायदा किया। लेकिन काम के हालातों में सुधार करने की बजाय, कम्पनी ने ऐसी व्यवस्था करनी शुरू कर दी कि मज़दूर आत्महत्या ही न करें। मज़दूरों के होस्टलों के इर्द-गिर्द स्टील का जाल और खिड़कियों पर स्टील के रोड लगा दिये गये। होस्टलों में धर्मगुरुओं, कौंसलरों और डॉक्टरों की फेरियाँ शुरू कर दी गयीं जिनका काम था कि मज़दूरों को जीवन जीने का पाठ पढ़ायें। मज़दूरों को काम पर रखा जाता है तो पहले उनसे एक क़ाग़ज़ पर हस्ताक्षर करवाया जाता है कि वे आत्महत्या नहीं करेंगे और करेंगे भी तो कम्पनी की इसमें कोई ज़िम्मेदारी नहीं होगी। लेकिन मज़दूरों के काम के हालात वहाँ जस के तस रहे। और मज़दूरों की आत्महत्याएँ भी आज तक जारी हैं। और साथ ही जारी हैं फ़ॉक्सकॉन और एप्पल द्वारा जाँच एजेंसियों से नकली जाँच करवाकर दुनिया के सामने अपनी तस्वीर सुधारने की कोशिशें। आये दिन वहाँ कम्पनी के विभिन्न प्लांटों पर मज़दूरों के संघर्षों की ख़बरें आती रहती हैं। कई बार तो मज़दूर अपने भयानक हालातों के विरोध में सामूहिक आत्महत्या की धमकी भी दे चुके हैं। फ़ॉक्सकॉन के मज़दूरों के हालातों की भयंकरता को 2014 में आत्महत्या करने वाले प्रतिभाशाली मज़दूर जू लिझी की कविताओं से समझा जा सकता है जिनके हिन्दी अनुवाद को मज़दूर बिगुल के अंक दिसम्बर 2014 में प्रकाशित किया गया था। मज़दूरों के यह हालात जहाँ एक तरफ़ विश्व की प्रतिष्ठित कम्पनियों की मज़दूर-विरोधी कार्य प्रणाली की पोल खोलते हैं वहीं कम्युनिज़्म का लबादा पहने पूँजीवादी चीन का असली चेहरा भी बेपर्द करते हैं।

वैसे भारत के लिए भी फ़ॉक्सकॉन कोई नयी नहीं है। यहाँ पर भी इसका इतिहास मज़दूर हड़तालों से भरा पड़ा है। वर्ष 2006 में पहली बार फ़ॉक्सकॉन ने भारत में उत्पादन शुरू किया था। इसके प्लांट चेन्नई के नज़दीक स्थित थे। यहाँ यह मुख्यतः नोकिया के लिए उत्पादन करती थी। नोकिया द्वारा पहले ऑर्डरों को लगातार कम किये जाने और फिर पूरी तरह ख़त्म कर दिये जाने के चलते दिसम्बर 2014 में इसने अपने आख़िरी प्लांट पर भी काम बंद कर दिया। भारत में फ़ॉक्सकॉन के मज़दूर वेतन बढ़ोतरी, उनकी अपनी यूनियन को मान्यता दिये जाने, मज़दूरों की स्थितियों को सुधारने जैसे मुद्दों को लेकर लगातार हड़ताल करते रहे थे। मज़दूरों के अनुसार 4-5 साल कम्पनी में काम करने के बाद भी उनका वेतन महज़ 4500-5000 रुपये प्रति माह होता था और कई मज़दूरों से तो 2500-3000 रुपये प्रति माह पर काम करवाया जाता था। मज़दूरों की अपनी यूनियन को भी मान्यता नहीं दी जा रही थी बल्कि उनके ऊपर मैनेजमेंट का पक्ष लेने वाली यूनियन थोपी जा रही थी। इसके अलावा प्लांट में भी स्थितियाँ भयंकर थीं। घुटन-भरे कमरों में टारगेट पूरे करने के दबाव में लगातार काम करना पड़ता था जिसके चलते आये दिन मज़दूर बिमार होते रहते थे। चिकित्सा और कैन्टीन की कोई सुविधा नहीं थी। ऐसी स्थितियों से आक्रोशित हो जब मज़दूर हड़ताल करते थे तो मैनेजमेंट-पुलिस के गठजोड़ द्वारा उनके संघर्ष को बर्बरता से कुचल दिया जाता था।

अब यही नर-पिशाच कम्पनी फिर से भारत आ रही है। लेकिन क्यों? दरअसल, जहाँ पर भी इन कम्पनियों को इनकी मज़दूर-विरोधी कार्य प्रणाली के लिए मज़दूर संघर्षों का सामना करना पड़ता है अपने मुनाफ़ों को बरकरार रखने की एवज में वहाँ से ये कम्पनियाँ ऐसी जगह की ओर प्रस्थान आरंभ कर देती हैं जहाँ मज़दूरों की श्रमशक्ति को बिना उनके विरोध के लूटा जा सके। और भारत को इसके लिए बिल्कुल मुफ़ीद जगह बना दिया गया है।

"मेक इन इण्डिया" के अलम्बरदार फ़ॉक्सकॉन का ढोल-नगाड़ों से स्वागत कर रहे हैं। "मेक इन इण्डिया" के तहत इतना बड़ा निवेश लाने के लिए कॉर्पोरेट मीडिया मोदी का गुणगान कर रहा है। पूँजीपति वर्ग के सच्चे सेवक मोदी ने सच में बहुत मेहनत की है! उन्होंने आर्थिक मंदी की दलदल में धंसे जा रहे विदेशी पूँजीपतियों को यह बताने में बहुत मेहनत की है कि "हे मेरे पूँजीपति मालिको! तुम्हें घबराने की ज़रूरत नहीं है। तुम्हारे इस प्रधान सेवक ने भारत की जनता और जमीन दोनों को तुम्हारे स्वागत के लिए बिल्कुल तैयार कर दिया है। अब और अधिक मत तड़पाओ! आओ और जी भरकर लूटो।" पहले से ही क़ाग़ज़ों की ख़ाक छान रहे श्रम क़ानूनों को लगभग ख़त्म कर देना, जल-जंगल-जमीन को कोड़ियों के दाम बेचने की तैयारी, पूँजीपतियों के लिए टैक्स की छूट आदि ये सब मोदी सरकार की "हाडतोड़" मेहनत ही तो है! दरअसल, विदेशी पूँजी को मोदी की यह पुकार सामूहिक तौर पर भारत के पूँजीपति वर्ग की ही पुकार है। फ़ॉक्सकॉन का ही उदाहरण ले लें तो टाटा और अदानी की फ़ॉक्सकॉन के साथ मिलकर आईफ़ोन और आईपैड बनाने की योजना है।

लेकिन इस पूरी योजना से अगर कोई ग़ायब है तो वह मज़दूर वर्ग ही है। मोदी के "श्रमेव जयते" की आड़ में मज़दूरों की हड्डियों तक को सिक्कों में ढालने की तैयारी चल रही है। और इस मज़दूर-विरोधी योजना का जवाब मज़दूर-एकजुटता से ही दिया जा सकता है।

– अखिल कुमार

अपनी हरकतों के चौतरफा विरोध से बौखलाये संघी फासीवादी गिरोह की झूठ पर टिकी मुहिम

देश में हिन्दुत्ववादी साम्प्रदायिक फासीवाद तेज़ी से फल-फूल रहा है। इसके खिलाफ़ जनता के विभिन्न हिस्सों से आवाज़ उठ रही है। हिन्दुत्ववादी कट्टरपंथी शक्तियों द्वारा मचाई अँधेरगर्दी के खिलाफ़ साहित्यकारों, इतिहासकारों, फिल्मकारों, कलाकारों व वैज्ञानिकों ने भी अपना विरोध दर्ज कराया है। इनके द्वारा पद्मश्री, साहित्य व संगीत अकादमी और राष्ट्रीय पुरस्कार लौटाना इन दिनों काफ़ी चर्चा का विषय बना हुआ है। इनाम लौटाने वालों का कहना है कि देश में असहनशीलता बहुत बढ़ गई है। विचारों की आज़ादी पर हमले हो रहे हैं। लोगों के रहन-सहन, खान-पान, प्रेम, विवाह, जैसे बेहद निजी दायरे के मामलों में फासीवादी टोले दख़लन्दाजी कर रहे हैं। मुसलमानों के खिलाफ़ बड़े पैमाने पर नफ़रत भड़काई जा रही है। गौ रक्षा के नाम पर बेगुनाह लोगों को सरेआम मारा जा रहा है। इस इनाम वापसी अभियान को इलेक्ट्रानिक व प्रिण्ट मीडिया में भी एक हद तक जगह मिली है। फेसबुक, ट्विटर, वाट्सएप आदि सोशल मीडिया पर इस मुहिम के चलते मोदी सरकार व समूचे फासीवादी गिरोह को काफ़ी विरोध का सामना करना पड़ा है। बड़ी संख्या में अन्य फिल्मी हस्तियों, साहित्यकारों, संस्थाओं द्वारा इनाम वापसी की हिमायत की गई है। इस दौरान इनाम वापसी के खिलाफ़ फासीवादियों ने भी मुहिम छेड़ दी है।

इनाम वापसी के खिलाफ़ चलाई जा रही मुहिम वास्तव में उन सभी धर्मनिरपेक्ष व जनवादी लोगों के खिलाफ़ मुहिम है जो हिन्दुत्व साम्प्रदायिकता का विरोध कर रहे हैं। आर.एस.एस., विश्व हिन्दू परिषद, बाबा रामदेव जैसों के कार्यक्रमों में इनाम वापसी के खिलाफ़ जोर-शोर से भड़ास निकाली जा रही है। इनाम वापिस करने वालों व इनाम वापसी की हिमायत करने वाली प्रसिद्ध हस्तियों के खिलाफ़ व्यक्तिगत कुत्साप्रचार किया जा रहा है। अगर विरोध करने वाला प्रसिद्ध व्यक्ति मुसलमान हो तो उसे खास तौर पर निशाना बनाया जा रहा है। ट्विटर, फेसबुक आदि पर मोदी भक्तों द्वारा गाली-गलौज़ की बाढ़ सी आ गई है।

संघी टोला इनाम वापसी का विरोध करते हुए अपनी औकात मुताबिक बेसिरपैर के "तर्क" दे रहा है और बेशर्मी की तमाम हदें पार करते हुए बड़े-बड़े झूठ बोल रहा है। कहा जा रहा है कि "भारत दुनिया का सबसे सहनशील देश है", कि भारत में घटित "छोटी-छोटी" घटनाओं को बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया जा रहा है। पूछा जा रहा है कि कांग्रेस की सरकारों के वक्त होने वाली साम्प्रदायिक घटनाओं के समय इनाम वापिस क्यों नहीं किए गए? इनका कहना है कि धर्मनिरपेक्ष लोग हिन्दुओं के कत्ल के खिलाफ़ कभी आवाज़ नहीं उठाते। झूठ बोलने की पुरानी आदत के मुताबिक इनके द्वारा मोदी शासनकाल में साम्प्रदायिक घटनाओं में कमी आने के दावे किए जा रहे हैं।

इनाम वापसी के जरिए रोष व्यक्त करने की मुहिम धर्म-निरपेक्ष व जनवादी ताकतों द्वारा साम्प्रदायिकता व फासीवाद के खिलाफ़ जारी संघर्ष का ही एक अंग है। सन् 1947 में अंग्रेज़ उपनिवेशवादी हकूमत की गुलामी से मुक्ति के बाद भारत में निर्मित पूँजीवादी व्यवस्था में हमेशा से ही जनवाद का दायरा बहुत तंग रहा है। विभिन्न साम्प्रदायिक, क्षेत्रवादी व जातिवादी शक्तियों द्वारा जनता के जनवादी अधिकारों पर हमले होते रहे हैं। लोगों को धर्म के नाम पर आपस में बाँटने-लड़ाने का काम अंग्रेजों के समय से ही होता आया है। भारत स्तर पर समूचे तौर पर इनमें हिन्दुत्ववादी कट्टरपंथी सबसे आगे रहे हैं। धर्म-निरपेक्ष, जनवाद पसंद ताकतों द्वारा इन सभी जनविरोधी ताकतों का विभिन्न रूपों में विरोध होता रहा है। संघी टोला यह पूरी तरह झूठ प्रचारित कर रहा है कि धर्म निरपेक्ष लोगों ने सिर्फ भाजपा के खिलाफ़ ही आवाज़ उठाई है। कांग्रेस अपनी राजनीतिक रोटियाँ सेंकने के लिए जातिवाद, क्षेत्रवाद सहित धार्मिक साम्प्रदायिकता का गंदा खेल खेलती

(पेज 10 पर जारी)

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक: सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पाकीय पता: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006